भा-२४।

ॐ श्रीकृष्णाय नमः ॐ

वर्ष ५

भक्ति

संख्या १०

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते ।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम् ॥

सर्व धर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणम् व्रज ।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥

वार्षिक चन्दा २)

सम्पादक—
म० कृष्णानन्द, भूमानन्द

एक प्रति ।)

आषाढ सम्वत १९८८

भक्ति के नियम

१. भगवान् की भक्ति का प्रचार करना, गो रक्षण और उसके लिए गोचर भूमि छुड़वाना, जलाशय बनवाना, मनुष्य मात्र के लिए शिक्षा का प्रचार करना. वैदिक अनुभूत औषधियों का प्रचार करना, ग्रामों में परस्पर के झगड़े और वैमनस्य मिटा कर शान्ति व प्रेम बढ़ाना, सब संस्थाओं में भगवद्भक्ति और धर्म का भाव जाग्रत करना, राजा और प्रजा सब ही का हित चिन्तन करना।

२. यह पत्र प्रतिमास की पूर्णिमा को प्रकाशित हुआ करेगा।

३. अग्रिम वार्षिक चन्दा सर्व साधारण से २) होगा

४. जो महानुभाव २५) या इससे अधिक देंगे वह पत्रके संरक्षक और ५) देने वाले सहायक होंगे

५. बाहर का कोई भी व्यापारिक विज्ञापन नहीं लिया जायगा।

६. लेखोंको प्रकाशित करना, न करना, घटाना, व बढ़ाना सर्वथा सम्पादक के अधिकार में होगा

७. लेख सम्बन्धी पत्र व्यवहार सम्पादक के नामसे और प्रबन्ध सम्बन्धी पत्र व्यवहार मैनेजर भक्ति के नाम से होना चाहिए

८. जिन ग्राहकों के पास जिस मास की "भक्ति" न पहुंचे, उनको स्थानीय पोस्ट आफिस में पूछ कर उस मास की अमावस्या से पूर्व कार्यालय में सूचना भेजनी चाहिये। स्थानीय पोस्ट आफिस में बिना पड़ताल किये अथवा अमावस्या के बाद सूचना आने पर "भक्ति" नहीं भेजी जायगी

९. पत्रोत्तर के लिये जवाबी, कार्ड भेजना चाहिये।

विषय सूची।

विषय	लेखक	पृष्ठ
१. वेदोपदेश		४१३
२. भगवद्भक्ति	[ले० पूज्य भोले बाबा जी	४१४
३. आह्वान (कविता)	[ले० श्रीरामसेवक सिंह 'श्याम'	४१६
४. ईश्वर के पास तार भेजना सीखो	[ले० श्रीस्वामी आत्मानन्द जी	४२०
५. गोरक्षा (कविता)	[ले० श्रीदामोदर सहाय सिंह जी बी० ए० एल० टी०	४२३
६. तुलसीदास जी और उनका महा काव्य	[ले० श्री नर्मदा प्रसाद जी खरे	४२४
७. क्षमा	[ले० श्री पं० रेवाधर जी पांडे	४२७
८. आरुणिकोपनिषद्		४३०
९. सत्गुरु के प्रति (कविता)	[ले० श्री० आत्मानन्द जी	४३६
१०. भगवच्चिन्तन में चमत्कार	[ले० श्रीराधा मोहन लाल जी शर्मा	४३७
११. मूढ मन निराश न हो		४३५
१२. विनय (कविता)	[ले० श्रीप्रभुदेव जी ब्रह्मचारी	४३७
१३. सत्य	[ले० श्रीमती	४३७
१४. अवतार जीवन में साधक भाव और श्रीराम कृष्ण	[ले० श्री स्वामी मेघेश्वरानन्द जी	४३९
१५. भजन		४४४

REGD. No. L. 2077

भक्ति प्रेस में मिलने वाली पुस्तकें।

			मूल्य
१.	भवगद्गीता संस्कृत तथा भाषा टीका सहिता		॥)
२.	भगवद्गीता दशम अध्याय पर्यन्त ...		,, ।)
३.	वेदोपनिषद् ...	...	,, ।)
४.	अष्टोत्तरशतमन्त्रमाला ...	...	,, ।)
५.	ज्ञानधर्मोपदेश ...	...	,, ।।)
६	भक्ति ज्ञान योग संग्रह ...	...	,, ।=)
७.	सत्य शब्द संग्रह (गुटका) ...	...	,, ।)
८.	सत्य शब्द संग्रह ...	...	,, ।=)
९.	शब्दसंग्रह ...	...	,, ।)
१०.	सारसंग्रह ...	...	,, =)
११.	भाषा फक्किका प्रकाश ...	...	,, ।)
१२.	भगवद्भक्तांक ...	...	,, ॥=)
१३.	भगवदंक ...	...	,, ।।)
१४.	गवांक ...	...	,, ।)

नोटः-एक रुपये से कम मूल्य की पुस्तक मंगाने वालों को डाक महसूल सहित टिक भेजने चाहियें।

मिलने का पताः-

श्री भगवद्भक्ति आश्रम, रेवाड़ी।

मुद्रक तथा प्रकाशक ब्रह्मानन्द ब्रह्मचारी "भक्ति प्रेस" भगवद्भक्ति आश्रम, रेवाड़ी।

भक्ति

श्री मुरली मनोहर।

जनता में भगवद्भक्ति भाव को जाग्रत करने वाली सचित्र मासिक पत्रिका।

वर्ष ५ | श्री भगवद्भक्ति आश्रम रेवाड़ी, आषाढ पूर्णिमा सं० १९८८ | अङ्क १०

वेदोपदेश

ब्रह्मचर्येण तपसा राजा राष्ट्रं विरक्षति।
आचार्यो ब्रह्मचर्येण ब्रह्मचारिण मिच्छते ॥ १ ॥

ब्रह्मचर्य रूप तप के साधन से राजा राष्ट्र का विशेष संरक्षण करता है। आचार्य भी ब्रह्मचर्य के साथ रहने वाले ब्रह्मचारी की ही इच्छा करता है ॥ १ ॥

ब्रह्मचर्येण कन्या युवानं विंदते पतिम्।
अनड्वान् ब्रह्मचर्येणाश्वो घासं जिगीषति ॥ २ ॥

कन्या ब्रह्मचर्य पालन करने के पश्चात् तरुण पति प्राप्त करती है। बैल, और घोड़े भी ब्रह्मचर्य पालन करने से ही घास खाते हैं ॥ २ ॥

ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमुपाघ्नत ।
इन्द्रोह ब्रह्मचर्येण देवेभ्यः स्वरा भरत् ॥ ३ ॥

ब्रह्मचर्य रूप तप से सब देवों ने मृत्यु को वशमें किया इंद्र ब्रह्मचर्य से ही देवों को तेज देते हैं ॥ ३ ॥

दृष्ट्वा रूपे व्याकरोत्सत्यानृते प्रजापतिः ।
अश्रद्धामनृते दधाच्छ्रद्धां सत्ये प्रजापति ॥ ४ ॥

हे मनुष्यो ! तुम सब लोग सब प्रकार से सब कालमें सत्य ही में प्रीति करो असत्य में कभी प्रीति नहीं करनी चाहिये ॥ ४ ॥

अग्ने व्रतपते व्रतं चरिष्यामि तच्छकेयं तन्मे राध्यताम् ।
इदमहमनृतात्सत्यमुपैमि ॥ ५ ॥

हे सत्यपते परमेश्वर ! मैं सत्यव्रत का आचरण करूंगा मेरे व्रतको पूरा कीजिये उस के सिद्ध करने वाले आप ही हो सो यह व्रत है कि मैं असत्य कामों से छूटकर सत्याचरण में रहूं ॥ ५ ॥

भगवद्भक्ति

[ले० श्री पूज्य स्वामी भोले बाबा जी]

न तद्भासयते सूर्यो न शशांको न पावकः ।
यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम ॥

धाम निष्ठा ।

मंसाराम- महाराज ! आज मैं भगवद्धाम की महिमा आप के श्रीमुख से सुनना चाहता हूं। कृपया भगवत् के धामों का माहात्म्य सुनाइये और इस निष्ठा के भक्तों की कथायें भी वर्णन कीजिये।

मस्तराम-(प्रसन्न होकर) भाई ! मंसाराम ! भगवद्धाम का वर्णन किस से हो सक्ता है ? भगवद्धाम की महिमा अपार है। धाम का अर्थ किसी स्थान पर भगवद्रूप से संबंध रखता है और कहीं २ पर धाम का अर्थ लोक है, जैसे कि वैकुंठादिक लोक हैं, सच्ची बात तो यह है कि भगवत् का धाम भगवत् रूप ही है। जैसे राहु का शिर कथन मात्र है, वस्तुतः शिर और राहु एक ही है, इसी प्रकार भगवत् और भगवत् का धाम कथन मात्र दो शब्द है, दोनों शब्दों का अर्थ एक ही है क्योंकि भगवत् का धाम अच्युत, अनन्त और माया से परे है और भगवत् भी अच्युत, अनन्त और माया से परे हैं।

भगवत् के ये नाम वेद और पुराणों में अनेकों स्थलों पर कहे हैं, तो भगवत् के धाम को भगवद्रूप होने में क्या संदेह है ? कुछ भी संदेह नहीं है। श्रुतियों, स्मृतियों, इतिहास पुराणादिकों में यह भी विख्यात है कि जब जीव माया से रहित होकर शुद्ध होजाता है, तब भगवद्धाम में पहुंचता है। इस कथन से भी भगवद्धाम भगवद्रूप सिद्ध होता है क्योंकि भगवत् प्राप्ति माया से मुक्त होने पर शास्त्रों में कही है, इसलिये भगवद्धाम भगवत् रूप ही है।

जैसे भगवत् की महिमा और उनके रंग रूप का वर्णन अतर्क्य और अकथनीय है, इसी प्रकार भगवद्धाम का वर्णन भी कथन से बाहर है। जैसा भगवत् ने अपना स्वरूप शास्त्रों में वर्णन किया है, वैसा ही अपने धाम का रूप भी वर्णन किया है। भाव यह है कि भगवत् का धाम सच्चिदानन्दघन रूप है, वहां के मन्दिर, अटारियां, वाटिका, फुलवाड़ी, द्रुम, लता, विमान, सरोवर, घाघड़ी आदि सब दिव्य रूप हैं अर्थात् सच्चिदानन्दघन तत्त्व के सिवाय किसी अन्य वस्तु का बना हुआ अथवा बनाया हुआ, वह धाम नहीं है, जिस प्रकार हलवाई खांड के खिलोने बनाते हैं, इन सब खिलोनों के आकार छोड़े, हाथी, ऊंट आदि भिन्न होते हैं, परन्तु उन खिलोनों के बाहर भीतर खांड ही खांड है, दूसरी वस्तु नहीं है, इसी प्रकार भगवद्धाम सच्चिदानन्दघन रूप है। फिर भी जहां तक बुद्धि की दौड़ है, वहां तक वे अनेक रूप रंग के भासते हैं,

हे मंसाराम ! भगवत् का धाम किसी मुख्य लोक अथवा ब्रह्मांड में नहीं हैं क्योंकि ऐसे असंख्य ब्रह्मांडों में से जहां कहीं जिस किसी को मुक्तिप्राप्त होती है, उस को यह धाम मिलता है और इस धाम में पहुंच कर अधिकारी आवागमन से छूट जाता है। गीता में भगवान् का वचन है कि जहां पहुंच कर जीव नहीं लौटता, वह धाम मेरा है। भागवत् में लिखा है कि भगवद्धाम में पहुंच कर जीव निश्चल होजाता है और फिर देह धारण नहीं करता। अन्य पद्म पुराण आदिकों में भी लिखा है कि भगवद्धाम में पहुंच कर जीव मुक्त होजाता है। उपनिषद् भी ऐसी ही आज्ञा करते हैं। बहुत विस्तार करने की आवश्यकता नहीं है, जिस किसी ने एक पुराण भी सुना होगा, उसकी समझ में भगवद्धाम की महिमा भले प्रकार से आगई होगी,

हे मंसाराम ! श्री संप्रदाय वालों के निश्चय में वह परम धाम वैकुंठ है, राम उपासकों के विश्वास में अयोध्या, साकेत और सांतावक है, कृष्ण उपासकों के सिद्धान्त में गोलोक है; इस प्रकार सब उपासक अपने २ इष्ट का धाम उसी गुण और महिमा वाला वर्णन करते हैं। स्मार्त मत वालों का सिद्धांत यह है कि वे लोग उस धाम को ब्रह्म लोक कहते हैं, अपने इष्ट देवता के धाम को सबसे ऊपर कहते हैं और दूसरे देवताओं के स्थानों को नीचे बताते हैं। किसी२ का यह निश्चय है कि वह धाम सच्चिदानन्दघन भगवत् रूप एक है, कोई अन्य स्थान नहीं है। जिस प्रकार भगवत् अपने इस वाक्य के अनुसार कि जो कोई जिस भाव से मेरा भजन करता है, इसी रूप से मैं उस से मिलता हूं, इसी प्रकार वह धाम भी भक्तों को उनके भाव और विश्वास के अनुरूप दिखायी देता है। भगवान् ने गीता में कहा है कि जो जिस भाव से मेरे शरण होते हैं, मैं उनको उसी भाव से मिलता हूं। नारायण उपनिषद्, अन्य कई उपनिषद् और सहस्रशीर्षा

आदि से भी यह ही बात सिद्ध होती है। हे मंसाराम! जब भगवत् भक्तों के भाव के अनुसार प्रकट होते हैं, तो भगवद्रूप भगवत् का धर्म भी वैसा ही होना चाहिये। भगवत् के प्राप्त होने में जो आनन्द है, वह ही आनन्द भगवद्धाम में सर्वदा प्राप्त होता है, उस आनन्द का वर्णन किसी से हो नहीं सका। शास्त्रों में स्वर्ग पृथिवी पर धन, राज्यादिक जो हजारों सुख लिखे हैं, वे सब सुख उस धाम के करोड़वें अंश के सुख के बराबर नहीं तुलते।

अब यह वर्णन और निर्णय करना उचित है कि मथुपुरी, अवधपुरी और काशी आदि धाम जो पृथिवी पर हैं, वे क्या हैं? हे मंसाराम! ये धाम वे ही हैं, जिन का वृत्तांत उपर कहा गया है, उस धाम और इन धामों में बाल बराबर भी भेद नहीं है, विचार कर देखा जाय, तो वैकुंठ धाम से इन धामों में एक प्रकार से विशेषता है क्योंकि वह धाम तो ऐसा है कि जब मनुष्य पूर्ण दृढ़ विश्वास करके उपसना करे और सब ओर से मन को हटाकर एकाग्र करके अपने ध्येय में लगावे, तब न जाने कितने जन्मों में वह धाम मिले और ये धाम ऐसे हैं कि कैसा ही पापी, अधर्मी जो उनकी शरण लेता है, वह भगवत् से जा मिलता है। यदि कोई किसी जन्म में एक बार भी उन धामों में रहता है, तो उस धाम के प्रताप से संगति को प्राप्त होता है, हे मंसाराम! विचारने की बात है, कि वह ईश्वर जिस को वेद 'नेति नेति' कहते हैं, अपने धाम को छोड़ कर इन धामों में आते हैं तो अब भी विराजमान् है तो इनकी धामों की बड़ाई हुई कि इस धामों की? इन धामों की ही बड़ाई हुई।

मंसाराम- महाराज! यदि ये धाम भी उस धाम के सदृश ही हैं, तो जो आनन्द और शोभा, वहां है वह आनन्द और शोभा यहाँ क्यों नहीं है!

मस्तराम-(हंसकर) भाई! इन धामों में संपूर्ण सुख और शोभा सदा ही है और इन्हीं धामों के प्रभाव से उस धाम का सुख जीव को मिलता है। जितना आराधन और प्रेम उस धाम की प्राप्ति के निमित्त होता है, यदि इस से आधा अथवा चौथाई भी आराधन और प्रेम विश्वास रहित इन धामों में हो, तो तुरन्त ही बेड़ा पार हो जाय! विश्वास सहित हृदय की आंखों को खोल कर देखा जाय, तो किंचित् भी भेद नहीं है। जीव गोस्वामी की कथा में वर्णन करूंगा कि वृन्दावन की शोभा की तनक झलक बादशाह को खिदलायी थी। हरिदास जी ने उस समय के बादशाह को व्रज की छवि और शोभा दिखाई थी। किसी घाट की एक सीढ़ी टूट गयी थी, सातों बादशाहत के धन से भी उस सीढ़ी का बनना बादशाह ने असंभव समझा था। इससे सिद्ध होता है कि विश्वास और दृढ़ प्रीति ही मुख्य है। जैसे २ मन निर्मल होता जाता है तैसे २ विश्वास की वृद्धि होती जाती है और सुख भी बढ़ता जाता है। तात्पर्य यह है कि हृदय के नेत्रों से धाम की शोभा देखने में आती है।

मंसाराम-वाह! महाराज! आप इन धामों को परम धाम के सदृश कैसे कहते हैं? आप का यह कथन अयुक्त सा जचता है, यहां के रहने वाले तो ऐसे शठ, धूर्त्त और कुचाली देखने में आते हैं कि समस्त संसार के पापियों में शिरोमणी हैं। यहाँ के निवासी तो ऐसे सज्जन और महात्मा होने चाहिये थे कि जिन के दर्शन करते ही पापी लोग

पापों से छूट जाते परन्तु ऐसा नहीं है। इन धामों के रहने वाले दुष्ट प्रकृति के क्यों हैं! इस का कारण बताइये।

मस्तराम- भाई! यहाँ के रहने वालों के दुराचरण देख कर भक्तों को अपने विश्वास से शिथिल होना उचित नहीं है क्योंकि धाम वासियों के अपकर्म से भी उन धामों का भगवद्रूप होना सम्यक् प्रकार से निश्चित होता है। भाव यह है कि भगवत् कल्पवृक्ष के सदृश हैं, भाव के अनुसार सब को फल देते हैं। दुष्काल के कारण धाम वासियों की रुचि पाप में होगयी है और भगवत् ने उनकी रुचि के अनुसार पापों की वृद्धि करदी है, इसलिये ये धाम कल्पवृक्ष के सदृश भगवत् रूप हैं, जो जैसी इच्छा करता है वैसा ही फल पाता है।

मंसाराम- महाराज! यदि इन लोगों के पाप की वृद्धि होगी, तो इनको शासन और ताड़न भी बहुत होगा और जब इनको दूसरों की अपेक्षा अधिक ताड़ना हुई, तो ये धाम ही दुःखदायी सिद्ध हुये, फिर मुक्तिदायक प्रभाव वाले कैसे हुये। यदि इनको दण्ड न हुआ, तो शास्त्रों में विधि निषेध की जो आज्ञा है, वह सब व्यर्थ हो जायगी।

मस्तराम- भाई! धामवासियों को भगवत् धाम सेवन का पूर्ण फल मिलेगा और शास्त्रों की मर्यादा भी बनी रहेगी। शास्त्रों के वचन से प्रसिद्ध है कि जो अन्य स्थानों के रहने वाले पापी पातकी हैं, वे लाखों, करोड़ों वर्षों तक नरकों में रहेंगे और चौरासी लाख योनियों में न जाने कितनी बार जन्म पावेंगे और नाना प्रकार के दुःख भोगेंगे। और धाम निवासियों को एक ही शरीर में थोड़े काल तक घोर दण्ड होकर वे पापों से छूट जायेंगे और भगवत् को प्राप्त होंगे।

हे मंसाराम! जब इन लोगों की चेष्टा पाप की ओर होती है, तब इनके पापों की वृद्धि होती है और पीछे धाम अपने प्रभाव से उनको पापों से शुद्ध करके परम धाम में पहुंचा देते हैं। विचारना चाहिये कि यदि कर्म शुभ होंगे, और भगवद्धाम में दृढ विश्वास होगा, तो वे बिना दण्ड के भगवद्धाम में क्यों न जायंगे? अवश्य जायंगे और विश्वास और पुण्यों की भी वृद्धि होगी।

मंसाराम- महाराज! बहुत से यात्री ऐसे देखने में आते हैं कि यात्रा करने के पीछे पूर्व से भी अधिक कठोर और पापों की चेष्टा करने वाले हो जाते हैं, इस का क्या कारण है।

मस्तराम- भाई! यहाँ भी कल्पवृक्ष का दृष्टांत समझना चाहिये। जैसे विश्वास और मन से लोग यात्रा करते हैं, इसी के अनुसार फल होता है। धामों के यात्रा करने की रीति और वहां रहने की विधि संक्षेप से कहता हूं ध्यान देकर सुन। प्रथम तो धाम में शुद्ध विश्वास होना चाहिये और जिस दिन से यात्रा आरंभ करे, इसी दिन से काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि मन से दूर कर देने चाहियें, मुख से भगवत् का नाम उच्चारण करना चाहिये और हृदय से भगवच्चरित्रों का चिंतवन होना चाहिये, भगवत् भक्तों का सत्संग करना चाहिये। यम, नियम, शम, दम, तितिक्षा, सत्य, दया, मैत्री और उदारता का पालन करना चाहिये। जब धाम में पहुंचे तो वहाँ के रहने वालों और समस्त द्वार, दीवारों को भगवन्मय समझे और जो कुछ दान, पूजा, स्नान, व्रत आदि कर्म करे, सब भगवत्

अर्पण करके फल की चाहना न करे और भगवद्भक्तों को ढूँढ कर उन का सत्संग करे। तीर्थयात्रा में सत्संग सार है। जब इस प्रकार यात्रा की जायगी और वहाँ निवास किया जायगा, तो पूर्ण फल मिलने में क्या संदेह है? कुछ नहीं। यदि ऊपर लिखे अनुसार न हो सके तो धाम में निवास होना चाहिये, भजन और सत्संग में प्रीति होनी चाहिये और अपकर्मों से बचना चाहिये। ऐसा करने से उत्तम गति प्राप्त होती है।

अब आज कल के यात्रा करने वालों का वृत्तांत कहता हूं, सुन। जब यात्रा अथवा पर्व का समय आता है, तो ये लोग इस प्रकार चर्चा करना आरंभ करते हैं कि अब की बार बड़ा भारी मेला होगा और अच्छा नयन विश्राम होगा क्योंकि चारों दिशाओं में से भांति २ के लोग जा रहे हैं। ऐसा विचार कर दश पांच मिलकर एक साथ चलते हैं। मार्ग में सिवाय व्यर्थालाप, हंसी ठट्ठा, असभ्य भाषण अनाप सनाप बकवाद और हुक्का आदि पीनेके और कुछ नहीं करते। जब धाम में पहुंचते हैं तो मेले के देखने में लग जाते हैं जब तीर्थ स्नान को जाते हैं, तो स्त्रियों के देखने और ताकने में मन लगा देते हैं और जब चलते हैं तब किसी स्त्री के पीछे पले कुत्ते के सदृश हो लेते हैं और उसे डेरे तक पहुंचा आते हैं। जब भगवत् मंदिर में दर्शन करने जाते हैं, भजन ध्यानादि कुछ नहीं करते, कोठे, अटारी, आदि और दूसरी लीलायें देखते फिरते हैं, फिर क्रय विक्रय करने लगते हैं, सत्संग नहीं ढूँढते, अपनी रुचि अनुसार भंगड़ी, चर्सी तथा अन्य कुसंगियों को ढूढने लगते हैं, हरिभजन अथवा कीर्तन नहीं करते, नाच राग देखते फिरते हैं। ऐसे लोग जब डेरे पर आते हैं तो आपस में बैठ कर उन स्त्रियों की चर्चा करते हैं, जिनको दिन में देखा था। अथवा वहां के रहने वालों की निन्दा करते हैं अथवा वणिक लोगों के ठगपने का वर्णन करते हैं, फिर सो रहते हैं! जितने दिन तीर्थ में रहते हैं यह ही आचरण करते हैं, जब ऐसी यात्रा हो, तो यात्रा का फल भी वैसा ही होगा। जो धनवान् यात्री हैं, यात्रा करने से पहिले ही फल की चाहना करते हैं जैसे कि अमुक कार्य हमारा होगा, बेटा होगा, धन मिलेगा, चाकरी मिलेगी, व्यापार में द्रव्य की वृद्धि होगी, इत्यादि फल चाहते हैं। मार्ग में सिवाय डिगरी, डिसमिस, मुकद्दमा अथवा जवाब दावी और रद्द जवाब का वर्णन करते हैं अथवा स्तुति निन्दा, मित्र शत्रु राजाओं और हाकिमों की करनी का कथन करते हैं अथवा काव्य, विरह की जलन, खाने पहिरने की रचना, सुन्दरता की चर्चा आदि ऊटपटांग बातें मुख से निकालते हैं। यदि हजार में से एक दो को विष्णु सहस्र नाम या महिम्न कंठ हुआ, तो स्नान करके पाठ करलेते हैं, नहीं तो कुशल क्षेम से जब धाममें पहुंचते हैं, तो घोड़े, बैल, दुशाले आदिक का लेन देन प्रारंभ करते हैं। स्नान करने को जाते हैं तो मांगने वालों के डर से शरीर को भिगोकर तुरन्त फल देते हैं, दान देते हैं तो हजार आदमियों को दिखलाते हैं और हजारों से वर्णन करते हैं, चाहना यह होती है कि इस दान से अमुक कार्य सिद्ध हो। यदि साधु ब्राह्मण मांगने लगता है, तो दान के बदले गालियां देते हैं और कहते हैं कि कैसा मोटा संडा है, मेहनत करके नहीं खाता, मुफ्त के माल पर कमर बांध रक्खी है। सारांश यह है कि जब इस प्रकार यात्रा हो तो

शास्त्र में कहे अनुसार फल कहाँ से हो ! हे संसाराम ! मथुरा अयोध्या आदि परम धाम के सदृश हैं ही , विश्वास, भगवद्भजन और धाम में प्रेम होना चाहिये, यदि थोड़ी सी भी प्रीति और भगवत् के मिलने की चिंता होगी, तो निश्चय शीघ्र ही भगवद्भक्ति की वृद्धि होकर भगवत् में सहज ही प्रीति हो जायगी । एक भक्त अपने मन को इस प्रकार समझाता है:-

हे मन ! सच्चे प्रेम से तीर्थ यात्रा कर, नहीं तो सब से अधिक तेरी दुर्दशा होगी । नियम यमों का पालन करता हुआ तीर्थ यात्रा में जा, फल की याचना कभी मत कर । जो कुछ करे भगवत् प्रीति के लिये कर, शुद्ध अन्तःकरण वालों को ही भगवत् की प्राप्ति होती है, मलिन अन्तःकरण वाले करोड़ों जन्म तक भी ईश्वर को नहीं प्राप्त होते किन्तु चौरासी लाख के चक्र में सर्वदा घूमते हुये जन्म मरण, आधि व्याधि आदि अनेक कष्ट पाते हैं । पृथिवी के धाम भगवत् धाम के सदृश ही हैं परन्तु मलिन अन्तःकरण वालों को ऐसा अनुभव नहीं हो सकता । शुद्ध होने के लिये नीचे के समाज का ध्यान किया कर !

ध्यान समाज- धर्म क्षेत्र कुरुक्षेत्र पावन धाम है । अठारह अक्षौहिणी सेना के बीच में अर्जुन का दिव्य रथ खड़ा हुआ है, रथ के घोड़े श्वेत हैं । रथ की ध्वजा पर केसरीनन्दन अंजनी कुमार बैठे हुये हैं, मुकुंद माधव रथ को हांक रहे हैं, एक हाथ में घोड़ों का बागडोर है, दूसरे हाथ में चाबुक है, अर्जुन विषादयुक्त होकर आंखों से आंसू बहा रहा है, युद्ध करने से विमुख है, भगवान् निःस्वार्थी सारथी समझा रहे हैं कि, अर्जुन ! कायर मत हो, हृदय की दुर्बलता को त्याग दे, युद्ध के लिये खड़ा होजा, कायरपना तुझे शोभा नहीं देता, कायर होने से तू अपकीर्ति को प्राप्त होगा, स्वर्ग द्वार तेरे लिये रुक जायगा, शिष्ट पुरुषों के लिये अपकीर्ति मरण से भी अधिक दुःख का कारण है । मन की दुर्बलता महान् दोष है, जिसका मन दुर्बल होता है, वह लोक परलोक दोनों के सुख से वंचित रहता है, और अन्त में अधोगति को प्राप्त होता है । जब अर्जुन इतना कहने पर भी विषाद का त्याग नहीं करता, तो भगवान् इसे गीता का उपदेश सुनाते हैं और अनेक युक्ति प्रयुक्तियों से समझा कर उसका मोह निवृत्त करते हैं, पश्चात् अर्जुन निःशंक होकर युद्धकरता है और अपने शत्रुओं पर विजय पाता है ।

आह्वान

[ले० श्री रामसेवकसिंह जी "श्याम"]

सागर के लोल लहरों में, हा तेरी डूबती आभो !
भंवर ग्रसित हूं कलित काल, अब सत्वर नाथ बचाओ ॥ १

शरणागत हा परम दीन हूं, हे नटवर तुरत सिधाओ !
आश एक तेरे जीवनधन, क्यों न टेर सुनि धाओ ॥ २

सुनि लो जलके बक भंवर में, आ दया दृष्टि दर्शाओ ।
आ सत्वर पतवार गहो प्रभु, अब बेड़ा पार लगाओ ॥ ३

ईश्वर के पास तार भेजना सीखो।

[ले० श्री स्वामी आत्मानन्द जी सरस्वती]

तार की तरह भक्त भी प्रभु के पास अपना संदेशा भेज सकते हैं किन्तु तारकी विद्या नहीं जानने वालों की यह बात बुरी लगती है। यदि विचार करके देखिये तो द्रौपदी, गज, प्रह्लाद, मीरा, पीपा, नामदेव आदि ने तार भेजने की विद्या सीख कर ईश्वर के पास तार भेजे और अपने कार्य की सिद्धि की।

कदाचित् कोई कहे कि इस विषय में कोई कोई विवाद करते हैं। सो ठीक नहीं किन्तु जो अश्रद्धालु हैं उनके अविश्वास में तो उनका दृष्टांत देना योग्य नहीं है क्योंकि सब वेदोक्त कर्मों में श्रद्धावान् पुरुष का ही अधिकार है! इस में स्वामी विद्यारण्य विरचित पंचदशी जो वेदांत का विद्वानों का माननीय ग्रंथ प्रमाण है।

अश्रद्धालोरविश्वासो नोदाहरणमर्हति ।
श्रद्धालोरेव सर्वत्र वैदिकेष्वधिकारतः ॥

अर्थ–विना श्रद्धावाले का विश्वास नहीं वह उदाहरण के योग्य नहीं, वैदिक में सर्वत्र श्रद्धावान का ही अधिकार है।

एक भक्त राजा बड़ा श्रद्धा भक्ति वाला था, पाठ पूजामें बहुत ध्यान रखता, सेवा स्मरण में जीवन बिताता, तीर्थ में घूमता, देव दर्शन में मस्त रहता और निष्काम वृत्ति से रहकर भगवद् इच्छा के अनुसार चलता था। यह देख उसका पड़ौसी जो एक नव शिक्षित था यह सोचता रहता था कि यह सब क्या ढोंग है, क्या इस प्रकार करने से ईश्वर मिल सकता है? इससे वह चिढ़कर भक्त से पूछता कि भक्त! इस प्रकार का नाच नाचने से तुम्हें क्या मिलेगा? यह बुद्धि का समय है कि विश्वास का? इस विश्वास से क्या होता है? चीनी चीनी करनेसे चीनी थोड़े ही मुख में आ सकती है? तब राम राम करने से तुम्हें क्या मिलेगा? मुफ्त में माला क्या फेरा करते हो? ऐसे ढोंगों में पड़े रहने से क्या प्रभु कहीं मिल सकता है? इसलिये स्नानादि में क्यों व्यर्थ कष्ट उठाते हो।

यह सुन कर उस भक्त ने कहा–भाई! तुम इसका मूल्य नहीं जानते जै तुम बहुत कुछ दिन पढ लेने पर भी तार देने की विद्या नहीं जानते हो, इसी प्रकार सर्व शक्तिमान् प्रभु के पास संदेश कैसे भेजा जाता है, इस की भी तुम्हें खबर नहीं है, जिस से तुम ऐसा कहते हो। किन्तु मुझे तो इसका अनुभव है। जैसे तुम मुझे ढोंगी समझते हो तैसे ही मैं भी तुमको नासमझ समझता हूं। क्योंकि सीखने के योग्य विषय को सीखे बिन तुम उसे बुरा समझते हो तथा उसकी बुरी टीका करते हो, किन्तु भाई! किंचित् धैर्य धारण करके विचार करो तो समझ में आजायगा कि तार देनेकी विद्या कुछ बुरी नहीं है। जैसे विशेष प्रकार के साधनों से यहां से तार दिया जा सकता है, वैसे ही दूसरे प्रकार के साधनों से प्रभु के पास भी तार भेजा जा सकता है। इस में तुम्हें नवीनता क्या मालूम पड़ती है! तुम इस बात को नहीं मानते तो इस में तुम्हारी

अज्ञानता है। इससे क्या यह विद्या बुरी होजायगी ! अनुभव किया हुआ एक दृष्टांत तुमको सुनाता हूं, वह सुनने ही योग्य है।

इस देश में जब प्रारंभ में तार लगा उस समय गुजरात के एक गांव मे मैं तार मास्टर था। वहां स्टेशन पर भील लोग काम करते थे। उनमें से एक ने देखा कि मैं "टक टक टक टक" कर रहा हूं और घंटी बजा रहा हूं, इससे उसने समझा कि मैं छोटे लड़कों के समान खेल रहा हूं। ऐसा समझ कर पूछा कि मास्टर साहब सारा दिन 'टक टक" क्या किया करते हो यह आपको शोभा नहीं देता, सरकार की नौकरी पाते हो भला उस का भी तो काम करना चाहिये। आपको जो यहां का मालिक बनाया है वह तुम्हारे विश्वास परही बनाया है यदि दिन भर "टक टक" ही किया करोगे तो विश्वासघात हुआ या नहीं आपही विचारियेगा। आपतो समझदार हैं पढे लिखे हैं, हमतो कुपढ़ हैं, आपसे वेतन भी कम पाते हैं, तब भी देखिये हम नमक हरामी नहीं करते। इसलिये हम आपको समझाते हैं कि आप दिनभर "टक टक" न किया करिये और मालिक का कुछ काम तो किया कीजिये। भला ईश्वर से तो डरना चाहिये उसके सामने उत्तर देना पड़ेगा। यदि मालिक देखने नहीं आता और आपसे कुछ नहीं कहता, परन्तु ईश्वर तो सहस्र नेत्र वाला है और सर्वव्यापी है घट घट की जानता है, हमने तो आप से हित की बात कह दी है आगे आपकी मरजी।

इतना सुन कर मैं बहुत हंसा और मैंने कहा भाई तुमने बहुत ठीक कहा। परन्तु मैं मालिक का ही काम करता रहता हूं "टक टक" करके घंटा तार भेज रहा हूं। तब उसने पूछा "तार क्या?" मैंने उत्तर दिया कि यहां बैठे बैठे जो कुछ मुझे कहना है उसे बम्बई भेज रहा हूं। इतने में ही फिर घंटी बजी- तब उस भीलने कहा, आपतो यहां बैठे हैं वहां घंटी किसने बजायी ? मैंने कहा बम्बई के तार मास्टर ने उसे बजाया है। यह सुन कर वह भील खिलखिला कर हंस पड़ा। उसने समझा कि यह सब ढोंग है और मास्टर मेरी हंसी उड़ारहा है अथवा मास्टर पागल होगया है। क्यों कि बम्बई में घंटी बजाने से यहां नर्वदा किनारे क्या कहीं सुनाई पड़ सकती है ? या बम्बई से बात की जा सकती है ? क्षेत्र हो तो एक कोनेकी आवाज दूसरे कोने पर नहीं सुनाई होगी और यह कहता है कि बम्बई के मास्टर के साथ बात कर रहा हूं और कुछ नहीं इसे भूत लगा है जिससे विचारा पागल होगया है। ऐसा समझ कर अपने जाति वाले दूसरे मजदूरों के पास जाकर उसने कहा, देखो कोई ओझा लाओ, मास्टर पागल होगया है। यहां बैठा बैठा खट खट करता है और कहता है कि बंबई के मास्टर से बात कररहा हूं। इसके पास कोई आदमी नहीं था और घंटी आप ही आप बज उठी। मैंने उस से पूछा ? तो उसने कहा कि बम्बई के मास्टर ने इसे बजाया है। भाई सुनो ! इस मास्टर को भूत लग गया है नहीं तो घंटी कैसे बज उठी ! मिरच की धूप देकर तथा डफली बजाकर आओ हमलोग भूत को भगादें, नहीं तो विचारा बहुत दुःख पावेगा ! भाइयो हमलोगों का धर्म है कि उसको बचाना चाहिये क्योंकि विचारा वह परदेशी है उसका यहां कौन है ? चलो ! चलो !! चलो !!! देरी न करो ! भाइयो चलो !! देरी न करो !!!

यह सुन कर उनमें से एक वृद्ध मनुष्य ने कहा "मास्टर की बात सत्य है। हम नहीं समझते तो क्या हुआ? किन्तु अंगरेजोंने तो तार देने की इस युक्ति को निकाला है। यह तो बम्बई तक तार देता है, किन्तु बम्बई वाले तो विलायत तक तार भेजते हैं। इतनी बात होने पर भी उस भील का मन नहीं भरा। वह सब को मूर्ख समझने लगा और लोगों को कहने लगा कि यहां बैठे बैठे टक टक करने से कहीं बम्बई खबर पहुंच सकती है? यह सब पैसा लेने का ढोंग है। उसका राज्य है जैसे चाहे वैसे भ्रम में डाल कर पैसा ले सकता है। मैं तार वार की बात नहीं मान सकता और अन्त तक उसने नहीं माना।

यह दृष्टांत देकर उस भक्त ने सुशिक्षित युवक से कहा–मिस्टर, क्षमा करना, आप भी उस भील के समान हैं। हमारी माला के दानों से स्वर्ग का तार बन्ध जाता है, यह बात तुम नहीं समझ सकते। हमारी माला की डोरी से स्वर्ग तक सीधी सीढी बन जाती है, इसे तुम नहीं देखते। जिसे तुम खिलौना कहते हो, उस भाव को शिक्षित करने वाले साधनों से मेरे हृदय में ईश्वर का कैसा प्रत्यक्ष वास होता है, उसे तुम देख नहीं सकते। मेरा नाम स्मरण का तार कहाँ तक पहुंच सकता है इस की तुम कल्पना भी नहीं कर सकते। मेरी सेवा से जगत् में कैसा ईश्वरीय स्नेह फैलता है उसे तुम समझ नहीं सकते और माला फेरने से मेरा आचरण कैसे सुधरता है, इसे तुम जान नहीं सकते। क्योंकि बहुत कुछ पढ़ने लिखने पर भी अब तक तुमने ईश्वर के पास संदेशा भेजने की विद्या नहीं सीखी है। विश्वास कैसी अलौकिक शक्ति है, अहा! हा! विचारों का बल कितना बड़ा है अहो! आश्चर्य! आश्चर्य!!! प्रेम में कैसी सत्ता है. इच्छा शक्ति क्या वस्तु है! भावना का बल कितना अमेय है. वासना का असर कहां तक पहुंचता है और संस्कार क्या कर सकता है? यह तुम जानते नहीं। इस से कहते हो कि राम राम कहने से क्या मिलेगा?

मैं तो ऐसा समझता हूं कि जो कुछ सार में सार है वह सब ईश्वर स्मरण में ही है। स्मरण से ही अल्पज्ञ आत्मा महात्मा हो सकते हैं भक्त ऋद्धि सिद्धि प्राप्त कर सकते हैं, स्मरण से ही धर्म टिका हुआ है और स्मरण से ही नर से नारायण हो सकते हैं। इससे मेरे लिये तो परम कृपालु परमात्मा का पवित्र नाम स्मरण ही मोक्ष धाम तक के लिये सच्चा तार है। इसी से हम अपनी भावना को प्रभु के पास भेज सकते हैं, उन्हें अपने हृदय में ला सकते हैं और इसी से प्रभुमय होकर अन्त में प्रभु के पास जा सकते हैं। इससे यदि तुम्हें अपना आचरण सुधारना हो, जीवन सार्थक करना हो, प्रभु का प्यारा बनना हो और अनन्त काल तक मोक्ष धाम का सुख भोगना हो तो बाहरी बातों में तथा मस्तिष्क के दर्शन शास्त्र में ही न पड़े रहकर हृदय में से प्रभु के पास तार भेजना सीखो।

प्रिय पाठको! यह बेतार का तार है यह त्रिलोकी में बिना रोक टोक जा सकता है इस तारको पृथ्वी जल, अग्नि, वायु, आकाश, सूर्य, चन्द्र, देव, मनुष्य, राक्षस, गंधर्व आदि कोई भी नहीं रोक सकता। परन्तु इसका देने वाला तारमास्टर सच्चा प्रेमी होना चाहिये "सांकल राम सनेह निसांई"। तब ईश्वर के पास तार पहुंच सकता है। यह निस्संदेह

सत्य है कि मनुष्य जन्म ईश्वर को तार देने के लिये ही मिला है। इसलिये प्रिय पाठको, आज से शमादि दैवी संपत्ति के गुणों को धारण करके ईश्वर को तार देना सीखो। सीखो!! सीखो!!! दृढ प्रतिज्ञावान् हो कर ईश्वर को तार देना सीखो। मत चूको!! मत चूको!!! नहीं तो मौत सिरपर खड़ी है खाजायगी। याद रक्खो ईश्वर को तार देना सीखो वह बचा लेगा।

गोरक्षा

[ले० श्री दामोदरसहायसिंह भीवी, ए., एल. टी, कविकिंकर]

(१)

नमो नमो गोमात विश्व की जननी प्यारी।
उऋण हो नहीं सकती तुझ से दुनिया सारी॥
निस्सन्देह तू है यथार्थ धन धान्य हमारा।
द्वापरान्त में व्यास देव ने तथ्य विचारा॥
सोना चाँदी औ रत्न मणि, सब धन केवल नामका।
यदि है कोई धन जगत में, गोधन है बस काम का॥

(२)

इसी लिये जन तुझे 'मात' हैं अब भी कहते।
अन्न वस्त्र खेती कर तव पुत्रों से लहते॥
यदि तू होती नहीं भूख के मारे मरते।
नंगे रह वनमानुष होने का दम भरते॥
बिना दही घी दूध के, बढ़ता नहीं विचार भी।
इस भांति सभ्यता का कहीं, होता नहीं प्रचार भी॥

(३)

पालन करती हमें बालपन से तू सुत सम।
देकर मीठा दूध शुद्ध सुन्दर अनुपम॥
भोजन के जो सकल वस्तुओं से है उत्तम।
एक जिसे ही पीकर भी जी सकते हैं हम॥
पय स्वास्थ्य सौख्य बलप्रद सदा, सर्वरोग निर्हीन कर।
हे माता! है तुझ से मिला, मानो कोई इष्ट वर॥

(४)

पय से बनता दही किन्तु रखता गुण न्यारा।
स्वाद बढ़ाता है भोजन का, कौन यहां प्यारा?
परम पुष्ट स्वादिष्ट मिष्ट सहा महा वर।
उदर रोग के शमन हेतु औषध अति सुन्दर॥
सुर पूजा ब्याह उछाह सब, भोज अधूरा ही रहा।
है जहां नहीं दधि सा सरस, वस्तु सुमंगल मय महा॥

(५)

दधि मथने से मिलता है घृत सार सुहावन।
जिस की उपमा नहीं, भोज्य करता जो पावन॥
यज्ञ हवन की मुख्य वस्तु जो है कहलाता।
सुर महिसुर भोजन न बिना जिसके बन पाता॥
पूरी पूआ हलवा मृदुल, बहु मिठाइयां स्वादुवर।
बनते न कहीं पर वे कभी, मोद प्रदायक स्वास्थ्य कर॥

(६)

गोबर का उपयोग यहां हम सभी जानते।
उड़ते रोगों का बाधक है सभी मानते॥
घर आंगन चौका चूल्हा को शुद्ध बनाता।
खेत खाद उत्तम, ईंधन का काम चलाता॥
हे गोबर! जो होता न तू, मूल्य गौरि गणेश की।
तो कैसे बनती देश में यह विभूति परमेश की॥

(७)

दूध दही घी गोबर औ गो मूत्र गव्य में।
पंच बने निष्पक्ष रोग में, हव्य कव्य में॥
यह न समझिये आप, मूत्र उपयोगी कम है।
कुछ रोगों की एक एक नहिं इस के सम है॥

यों देती हम को नित्य प्रति, गो माता कल्याण है।
खा कर के भूसा घास ही अहह ! बचाती प्राण है ॥

(८)

सीधी सादी गाय सदृश, लोकोक्ति सु प्रचलित।
पाल तुझे भगवान् कृष्ण गोपाल है कथित ॥
गो ब्राह्मण की रक्षा हित परमेश्वर आते।
धर्म सेतु को बचा पाप का नाश कराते ॥
वैतरणी करते पार हम, पूंछ पकड़ जिसकी सदा।
सुर बसते जिसकी देह में, है उपेक्ष्य क्या वह कदा ?

(९)

नृप दिलीप ने एक नन्दिनी रक्षा हित।
नव वय वपु साम्राज्य प्राण थे किये समर्पित ॥
पर अब तो लाखों गायें कटतीं मन माने।
हम उनकी सन्तान पड़े हैं चादर ताने ॥
सम्पज्जननी गो विमुख हो, हम आलस में सो रहे।
इसलिये हमारा ह्रास, है, रंक भिखारी हो रहे ॥

(१०)

एक ओर है गोरक्षा का प्रश्न उपस्थित।
कठिन-गृह-नियम-भंग दूसरी ओर समुत्थित ॥
यह न करें तो धर्म जाय गो द्विज दुख पाता।
यह न करें तो धनुषबाण कैसे कर आता ॥
यों वीर धीर अर्जुन बड़े, असमंजस में था पड़ा।
पर उसने कष्ट सहन किया, गोरक्षा पर जी कड़ा ॥

(११)

गो कुल के ही साथ मनुज कुल बढ़ सकता है।
उन्नति गिरि के उच्च शिखर पर चढ़ सकता है ॥
भारतीय ऋषियों का यह सिद्धान्त पुराना।
पश्चिम के सम्पदाभिमानियों ने अब जाना ॥
तब वैज्ञानिक विधि से बढ़ा, गोपालन करने लगे।
अब सुख सम्पत्ति सौभाग्य का, नेत्र समान भरने लगे।

तुलसीदास जी और उनका महाकाव्य

गतांक से आगे।

[ले० श्री नर्मदा प्रसाद जी खरे]

गोस्वामी जी को हनुमान द्वारा रामदर्शन

तुलसीदास जी नित्य, जिस समय प्राची दिशा में, प्रभाकर लाल वस्त्र धारण कर गगनांगन को अपनी-अरुणिमा से परिपूर्ण करते थे, और चन्द्रदेव पश्चिम दिशा में विलीन होने लगते थे उसी समय भागीरथी के उस पार आप शौच करने जाते थे और लौट कर बचा हुआ पानी एक आम के पेड़ पर डाल देते थे उस आम में एक प्रेत रहता था वह एक दिन तुलसीदास जी पर प्रसन्न हो पेड़ से प्रगट हुआ और बोला कुछ मागों, आप राम भक्ति में रंगे हुए तो थे ही कहने लगे मुझे राम-दर्शन के अतिरिक्त और कुछ नहीं चाहिये। उसने कहा यह काम तो मेरी सामर्थ्य के बाहर है परन्तु अमुक मन्दिर में मैली कुचैली दशा में एक कोढ़ी मनुष्य बैठा रहता है, वे हनूमान हैं उनके द्वारा तुम्हें राम दर्शन हो जावेंगे। तुलसीदास जी हनूमान जी के पीछे पड़े तब हनूमान जी ने कहा चित्रकूट में तुम्हें राम दर्शन होंगे। तब से तुलसीदास चित्रकूट चले गये और उन्हें वहां राम दर्शन हुए। इस प्रकार हनूमान जी आप को सदैव सहायक होते रहे कहते हैं रामायण में एक बार तुलसीदास कुछ अशुद्ध

लिख गये उस समय भी महावीर जी ने उन्हें सुमार्ग सुझाया था।

चोरों का आक्रमण:-

कहते हैं, एक दिन तुलसीदास जी के यहां कुछ चोर आये उन्होंने देखा कि एक श्याम सुन्दर बालक उनके घर की रक्षा कर रहा है। दूसरे दिन उन्होंने रात्रि का सब हाल तुलसीदास जी से कह सुनाया, तब वे सब रहस्य समझ गये और उसी दिन उन्होंने अपनी सारी सम्पत्ति लुटा दी।

राम लीला का प्रारम्भ भी तुलसीदास जी ने किया। यह लीला काशी में असी घाट पर अब तक होती है। इस घाट ही के पास तुलसी दास जी के समय की लंका भी है।

मुर्दे को जिलाना—एकबार एक स्त्री का पति मर गया था वह अपने पति के साथ सती होने जा रही थी रास्ते में तुलसीदास जी मिले उसने आपको प्रणाम किया आपने कहा पुत्री सौभाग्यवती होओ। उसने कहा, मेरा पति तो मर गया मैं उसके साथ सती होने जा रही हूं। अब मैं सौभाग्यवती कैसे होसकती हूं तब आप गंगा किनारे जा कुशासीन हो रामभजन करने लगे, कहते हैं कि वह मुर्दा जीवित होगया और भक्तवत्सल भगवान् ने आपके वचन सत्य किये।

बादशाह की कैद— मुर्दा जिलाने की बात जब बादशाह के पास पहुंची तब उन्होंने इन्हें बुला कुछ करामात दिखाने के लिये कहा तुलसीदास जी ने कहा, मैं तो राम नाम के सिवाय कुछ करामात नहीं जानता इस पर बादशाह ने इन्हें कैद कर लिया उन्होंने उस समय महावीर हनुमान् की प्रार्थना की, उसी समय हनुमान् ने अपनी सेना सहित बादशाह पर आक्रमण किया, यह देख बादशाह ने तुलसीदास को छोड़ दिया।

इस प्रकार की बहुत सी कथाएं आप के सम्बन्ध में प्रसिद्ध हैं।

तुलसीदास समकालीन बहुत से विद्वानों से परिचित थे, जैसे रहीम, खान खाना, राजा-टोडरमल, नन्ददास जी, नाभा जी, मीरा बाई आदि। ये विद्वान भी तुलसीदास जी को आदर की दृष्टि से देखते और उनके प्रति सहानुभूति रखते थे।

इस प्रकार राम भक्ति से प्लावित शरीर हिन्दी साहित्याकाश का देदीप्यमान प्रभाकर लोगों के हृदय पर राम भक्ति की प्रभा प्रवाहित कर, सम्वत् १६८० में सदैव के लिये विलीन हो गया।

इनके शरीर-पात की भी एक कथा प्रसिद्ध है यह तो निश्चित है कि ये प्लेग से बीमार पड़े थे। इस बीमारी से कई लोग नित्य मरा करते थे, जब प्लेग से इनका शरीर जर्जरित होगया तब महावीर की प्रार्थना करने पर इनका स्वास्थ्य ठीक हो गया परन्तु मृत्यु के मुख का ग्रास कौन नहीं बना इनका मृत्यु समय इस दोहे से स्पष्ट होता है।

संवत सोरह सौ असी, असी गंग के तीर।
श्रावण शुक्ला सप्तमी, तुलसी तज्यो शरीर॥

कहते हैं तुलसीदास जी का अन्तिम दोहा यह है:-

राम नाम बस बरिन के, भयऊ चहत अब मौन।
तुलसी के मुख दीजिये, सब ही तुलसी सोन॥

यह सब विवरण तो रत्न-ग्रन्थों के रचयिता का हुआ अब उनके देदीप्यमान ग्रन्थ-रत्नों को भी

तो देखिये जो सृष्टि के अन्त तक अपना प्रकाश करते रहेंगे।

तुलसीदास जी के महाकाव्य।

रामायण–इस ग्रन्थ के रचने के अंकुर नर हरिदास ने तुलसीदास जी के हृदय पटल पर उगा दिये थे परन्तु जब बीज उनके हृदय पर बोया गया था तब आप अज्ञान थे उन्होंने स्वयं कहा है:–

मैं निज गुरु सन सुनी, कथा सो सूकर खेत।
समुझी नहिं तस बालपन, तब अति रहेउं अचेत॥

× × ×

तदपि कही गुरु बारहिं बारा, समुझि परी कछु मति अनुसारा।

× × ×

भाषा बद्ध करब सो सोई, मेरे मन प्रबोधि जिह होई।

इस ग्रन्थ का नाम तुलसीदास जी ने राम चरित्र मानस रखा परन्तु लोक प्रसिद्ध रामायण हुआ। इस अमृत सरिस ग्रन्थ की रचना उन्होंने अयोध्या में जाकर प्रारम्भ की उन्होंने कहा भी है:–

संवत सोलह सो इकतीसा, करहुं कथा हरि पद धरशीशा।
नौमि सौमवार मधुमासा, अवधपुरी यह चरित्र प्रकाशा।

रामायण के अतिरिक्त आपने और कई ग्रन्थ लिखे हैं जैसे, विनय पत्रिका, दोहावली, कृष्ण-गीतावली, पुष्पाञ्जलि आदि। इनसे सर्वश्रेष्ठ स्थान राम चरित्र मानस को ही मिलता है।

जिस समय तुलसीदास ने इस अनुपम ग्रन्थ की रचना की उस समय देश की क्या दशा थी, यह भी जानने योग्य है:–

यह ऐसा समय था, जिसमें हिन्दू-धर्म की दशा अतीव शोचनीय थी। प्रत्येक विधर्मी इस धर्म तथा जाति पर दाँत लगाये बैठा था। इस समय प्रत्येक हिन्दू स्वतः शिखा-सूत्र और गो रक्षा करने में असमर्थ था और इसी विचार में मग्न रहता था कि किसी दिन मुझे भी विधर्मियों की शिकार होना पड़ेगा। भारत जब इस प्रकार दुर्दिन देख रहा था, धर्म-पतवार पाप के बोझ से लद कर इस धार्मिक सागर में डूबना चाहती थी, तब इस अनुपम ग्रन्थ की रचना हुई। जिसने अपने ज्ञान प्रकाश से लोगों के हृदयों का प्रगाढ़-अन्धकार नष्ट किया।

यह ग्रन्थ शीघ्र ही लोकप्रिय हो गया। कारण यह है कि इसमें धर्मनीति, समाज-नीति और राजनीति सब ही आर्ष-ग्रन्थों के अनुसार सरल भाषा में, उत्तम उदाहरणों सहित, निष्पक्ष भाव से लिखी गयी है। जिससे कि शैव, शाक्त, स्मार्त्त, वैष्णव, किसी के भी सिद्धान्त में किसी भी प्रकार की बाधा नहीं आती और सभी इसका सम्मान करते हैं।

गो स्वामी जी सत्समुच में स्वाभाविक कवि थे। एक विद्वान् का कथन है, कि अगर कोई वसन्त के पुष्प और शरद ऋतु के फल पाने की अभिलाषा करे, अगर कोई मन को अपनी ओर खींचने वाली अर्थात् वशीकरण की वस्तु देखना चाहे, यदि कोई प्रसन्नता और प्रफुल्लता से मिलना चाहे, अगर कोई पृथ्वी और स्वर्ग एक ही स्थान में देखने की इच्छा करे, तो वह तुलसीदासजी की रामायण पढ़े। इस ग्रन्थ की कविता में यह विशेषता है, कि वह इतनी सरल और सरस है, कि पढ़ते ही समझ में आजाती है। गोस्वामी जी की उपमायें भी बड़ी ही अनूठी हैं।

रामायण चाहे जिधर से पढ़िए उसकी प्रत्येक बात हृदय में चुभ जाती है। गोस्वामी जी की कविता जो पढ़ेगा, उसे कहना ही पड़ेगा कि शेक्सपियर के सिवा तुलसीदास के पास आसन पाने वाला दूसरा कवि पृथ्वी पर नहीं है। शेक्सपियर मनुष्य के हृदय के भावों को प्रगट करने में अगर बढ़ा चढ़ा है तो तुलसीदास वर्णन करने में उससे बहुत बढ़ कर है। इनकी कविता में भाव तो अच्छे हैं ही, लेकिन भाषा भी ऐसी है, कि कर्णों में अमृत वर्षा करती है। रामायण धर्मानुशासन करने के लिये धर्म-शास्त्र का काम करती है यदि यह धर्म ग्रन्थ न बना होता, तो धर्म नियमों का रहा सहा विचार भी चला जाता।

जिस समय हिन्दू धर्म की नौका अगम समुद्र में डगमगा रही थी और सम्भव था वह रसातल को चली जाती, परन्तु तुलसीदास ने इस ग्रन्थ (रामायण) की रचना कर डूबती हुई नौका को आश्रय दिया। इसी के आश्रय को लेकर लाखों मनुष्य धर्म पर आरूढ रहे। अम्बादत्त कहते हैं:-

धनिक भिखारिन की नर अरु नारिन की,
कूट कार वारिन की छाती सरसातो कौन?
कहैं कवि अम्बादत्त बूढ़े से बालन सों,
राम बस इलन सों हिय हरसातो कौन?
नये मतवोर मतवारन के कान काढ़,
कलिहुं में रीति-नीति-प्रीति दरसातो कौन?
होतो न जो तुलसी गुसाईं कविराज आज,
रामायण परम-पियूष बरसातो कौन॥

यह सब तो रामायण की विशेषताएं हुईं, अब उनकी कविता के विषय में कुछ कह देना उचित समझता हूं। इनकी कविता में भक्ति-रस बहुत है, आपकी सारी कविता भक्ति से ओत प्रोत है तुलसीदासजी जिस भक्ति रसमें रंग गये थे उसी रंगमें सब को रंगने का प्रयत्न आपने अपनी कविता में किया है। इसके साथ साथ आपकी कविताओं की भाषा सरल और सुधावर्षा करने वाली है। तुलसीदास जी की कविता इस सृष्टि में जब तक विद्यमान रहेगी तब तक प्रत्येक हिन्दू के हृदय में तुलसीदास की प्रेम प्रतिमा स्थापित रहेगी.

क्षमा

[डॉ० श्री पं० रेवाधर जी पांडे]

आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक, दुःखों के सहने को क्षमा कहते हैं। अथवा ताड़ना करने और कुवाच्य कहने पर भी निग्रहानुग्रह, समर्थ, शक्तिमान् मनुष्य के चित्त में क्रोध विकार अर्थात् क्षोभ उत्पन्न न हो ऐसी अवस्था को क्षमा कहते हैं।

वाचे वाध्यात्मिके चैव दुःखे घोपादिके क्वचित्।
न कुप्यन्ति न वा हन्ति, सा क्षमा परिकीर्तिता॥
आक्रुष्टोऽभिहतो वस्तु नाक्रोशेन्न हनेदपि।
आदुष्टैर्वांमनः कोपैस्तितिक्षा तु क्षमा स्मृता॥

अर्थात् क्रोध करने वाले और मारने वाले के ऊपर क्रोध न करना न उस को मारना, किन्तु मन, वाणी और शरीर से निर्विकार हो इनका सहना क्षमा कहाता है। संसार में त्रिगुणात्मिका

प्रकृति से उत्पन्न होने के कारण तीन ही प्रकार के मनुष्य अखिल भूमण्डल पर तामस, राजस, सात्विक भेद करके देखने में आते हैं। उनमें तामस प्रकृति के वह हैं जो सर्वदा दूसरे का अपकार ही करते हैं। राजस प्रकृति के वह हैं जो उपकार के बदले उपकार और अपकार के बदले अपकार करते हैं और सात्विक स्वभाव के वह हैं जो दूसरे के किये अपकार के बदले भी उपकार ही करते हैं। इस अन्तिम कोटि के मनुष्य उत्तम श्रेणी में गिने जाते हैं। इनको यह प्रशंसनीय गुण क्षमा द्वारा ही प्राप्य है क्योंकि यह स्पष्ट है कि जब तक दूसरे के किये अपकार को मनुष्य सहकर उसकी कुछ परवाह न करेगा तब तक वह उपकार करने के अपने स्वाभाविक गुण को किस प्रकार प्रकट कर सकता है ?। इस उत्तम कोटि के उपकारी जीवों में विशेष यह गुण देखने योग्य है कि दूसरों को उनके अपकार करने का दण्ड देने में समर्थ होते हुये भी इनको इसकी कुछ परवाह नहीं होती, नहीं तो कारणवश, निर्बल बदला लेनेमें असमर्थ होते हुये तो क्षमा के गुण को सबही धारण कर लिया करते हैं। सच्ची क्षमा वही है जो शक्ति होने पर दिखलाई जाय। क्षमावान् पुरुषको कोई २ मनुष्य अशक्त मानते हैं परन्तु यह दोष सच्ची क्षमा दिखलाने वाले के ऊपर कभी आरोपित नहीं हो सकता क्योंकि उसका तो गुण ही यह है कि शक्ति होते हुए दूसरों की बातें सहता है। क्षमा ऐसे ही प्राणियों का भूषण है "शक्तानां भूषणं क्षमा" इन क्षमाशील पुरुषों में ऐसी सामर्थ्य हुआ करती है कि उनके सामने किसी शत्रु की कुछ भी नहीं चलती। महाभारत में कथा है, कि एक समय वशिष्ठ और विश्वामित्र में बड़ा झगड़ा चला, झगड़ा तो इस बात का था कि विश्वामित्र क्षत्रिय थे पर बहुत तप करने के कारण कहते थे कि हमें सब कोई ब्राह्मण कहो पर यह बात उस समय ब्राह्मणों को पसन्द नहीं आई। वशिष्ठजी ने कहा कि आप क्षत्रिय हैं और तपस्वी हैं इसलिये आप राजर्षि कहला सकते हैं परन्तु ब्रह्मर्षि नहीं। इसी बात पर विश्वामित्र जी ने वशिष्ठ जी से शत्रुता बांधी। विश्वामित्र बार २ अधिक २ तप करके आते थे और इस प्रकार अपनी बढ़ाई हुई शक्ति और तेज के बल से वशिष्ठ को दबाने का उद्योग करते थे परन्तु वशिष्ठ जी कभी भी उनके वश में न आये। एक बार विश्वामित्र वशिष्ठ जी के ऊपर अपशब्दों की बौछार भी करने लगे और उन पर अस्त्र शस्त्र भी चलाये परन्तु क्षमा स्वरूप वशिष्ठ जी पर उनका कुछ भी असर न हुआ। वशिष्ठ जी में इतनी शक्ति थी कि उन्होंने विश्वामित्र जी के समस्त प्रहारों को एक दण्ड पर ही रोक लिया। यदि वह चाहते तो स्वयं अपने प्रहारों से पराजित कर देते, परन्तु नहीं उनका स्वाभाविक गुण क्षमा उनको ऐसा करने की आज्ञा नहीं दे सकता था। अन्त यह हुआ कि विश्वामित्र जी फिर भी पराजित हुए। वस्तुतः बात यह है कि शांतिवान् और दयावान् पुरुष के सामने कोई शक्ति समर्थ नहीं होती। कहा भी है।

शान्ति खड्गं करे यस्य किंकरिष्यति दुर्जनः।
अतृणे पतितो वह्नि स्वयमेवोपशाम्यति ॥

अर्थात् जिसके हाथ में शान्ति का खड्ग मौजूद है शत्रु उसका कुछ भी नहीं कर सकते जहाँ ईंधन न हो वहाँ अग्नि भी गिर कर स्वयं शान्ति को प्राप्त होती है। शान्ति की महिमा भी अपार

है। जहाँ शान्ति है वहाँ आनन्द है जहाँ अशान्ति होती है वहां पर सैंकड़ों चिन्तायें बाधायें और आपत्तियें मनुष्य के सामने खड़ी रहती हैं। ईश्वर प्राप्ति के लिये योग आवश्यक बतलाया है। "योग-श्चित्तवृत्ति निरोधः" योग के लिये चित्त की वृत्तियों का निरोध करना चाहिये और चित्त की वृत्तियों का निरोध शान्ति की अवस्था में ही सम्भव है। शान्ति क्षमा का नामान्तर है। अतएव यह सिद्ध हुआ कि ईश्वर प्राप्ति के लिये क्षमा का होना अत्यावश्यक है। इसीलिये क्षमा की प्रशंसा पर भारत में कहा है:-

क्षन्तव्य मेव सततं पुरुषेण विजानता।
यदा हि क्षमते सर्वं ब्रह्म संपद्यते तदा॥
क्षमावतामयंलोकः परश्चैव क्षमावताम्।
इह सन्मान मृच्छन्ति परत्र च शुभां गतिम्॥
येषां मन्युर्मनुष्याणां क्षमयाऽभिहतः सदा।
तेषां परं तरे लोकास्तस्माक्षान्तिः परा स्मृता॥
अति ब्रह्मविदांल्लोकान् क्षमिणः प्राप्नुवंति च।
अति ब्रह्मविदांल्लोकानति चापि तपस्विनाम्॥
क्षमा तेजस्विनां तेजः क्षमा ब्रह्म तपस्विनाम्।
क्षमा सत्यं सत्यवतां क्षमा यज्ञ क्षमा शमः॥

कदाचित् किसी मनुष्य के मन में यह शंका उत्पन्न होगी कि जिस क्षमा के धर्म की व्याख्या ऊपर की है वह संन्यासियों से अथवा उन लोगों से तो सध सकती है जिन्होंने संसार से अपना सम्बन्ध पृथक् कर लिया है किन्तु गृहस्थी अथवा राजा के लिये जिनको गृह प्रबन्ध अथवा राज्य प्रबन्ध के लिए बच्चों तथा भृत्यों को लड़ना और न्यायानुकूल प्रजा को दुष्कर्मों का दण्ड देना होता है क्षमा का साधन अहितकर होगा। क्षमा का धर्म किसी के भी लिए अहितकारक नहीं होता क्षमा का अर्थ भली प्रकार समझ लेना चाहिये किसी के अपराध का उसको दण्ड न देकर उसको बुरे मार्ग पर जाने देना अथवा दुष्ट बालकों को उनकी दुष्टता के लिये ताड़ना न देकर मनमाने कार्य करने देना यह क्षमा नहीं कहलाती, जिस क्षमा से दूसरों को हानि पहुंचे वह तो एक प्रकार का अधर्म है, धर्म नहीं। इसलिये क्षमा का यह अभिप्राय कदापि नहीं कि न्यायानुकूल दण्डनीय को दण्ड अथवा ताड़ना न दी जाय। दण्ड अथवा ताड़ना देते समय क्षमा धर्म साधन करने के लिए जिस बात की आवश्यकता है वह यह है कि ऐसे अवसर पर मन में क्रोध, ईर्षा, अथवा द्वेषभाव का कोई विकार न आने पावे। जो मनुष्य इन विकारों से रहित होकर धर्मानुकूल अथवा न्यायानुकूल कर्त्तव्यबुद्धि से अपने कर्तव्य का पालन करता चला जाता है, वह क्षमा के धर्म का पूरा २ पालन करता है और जो क्षमा धर्म के असली भाव को न समझकर अपने कर्तव्य में त्रुटि करता है वह एक प्रकार का अधर्म कमाता है। इति शम्॥

सत्गुरु के प्रति

[ले० श्री अभयानन्द जी]

मिटा दो मेरे सब सन्ताप, दया कर मनके व्यर्थावेश।
दुखी जनको अपना ही जान, रमा दो रग २ में उपदेश॥१
बोधकर देव! दयाकी डाल, गहादो प्रेमकी पूरी डोर।
बता कर सीधा सा संकेत, दिखादो उसके पथकी ओर॥२
'अभय' को दे हरि भक्ति-दान, सुनाना फिर कुछ अमिरस घोर।
सफलता का दे आशीर्वाद, भेज दो उस प्रियतम की ओर॥

अथ आरुणिकोपनिषद्

प्राजापत्य आरुणि प्रजापति के लोक को गये। वहां जा कर प्रजापति (ब्रह्मा) से बोले कि हे भगवन्! किस उपाय से सब कर्म्मों को छोड़ूं। प्रजापति ने उन से कहा कि पुत्र, भाई, बान्धव, आदि, शिखा, यज्ञोपवीत, यज्ञ, स्वाध्याय, भूर्लोक, भुवर्लोक, स्वर्लोक, जनलोक, तपलोक, सत्यलोक, अतल, तलातल, वितल, सुतल, रसातल, महातल, पाताल और ब्रह्माण्ड को छोड़ देना चाहिए। दण्ड, आच्छादन और कौपीन ग्रहण करे। शेष सब कुछ छोड़ दे। ब्रह्मचारी अथवा वानप्रस्थ यज्ञोपवीत को पृथ्वी पर अथवा जल में छोड़ दे। लौकिक अग्नियों को उदराग्नि में आरोपित करे। कुटीचक ब्रह्मचारी कुटुम्ब को छोड़ दे। पात्र छोड़ दे। दण्डों को और लोकों को छोड़ दे; यह कहा। इस से आगे अमंत्रवत् आचरण करे। ऊँचे जाना छोड़ दे। औषध के समान भोजन करे। तीनों सन्ध्याओं के आदि में स्नान करे। समाधि में आत्मा में सन्धि करे। सब वेदों में आरण्यक की आवृत्ति करे-उपनिषद् की आवृत्ति करे ॥ २ ॥ मैं ब्रह्म का सूचन करने से सूत्र, अर्थात् ब्रह्मसूत्र हूं; ऐसा जानता हुआ त्रिवृत् सूत्र (यज्ञोपवीत) त्याग दे। जो विद्वान इस प्रकार जानता है 'मैं ने संन्यास किया, 'मैं ने संन्यास किया' 'मैं ने संन्यास किया' इस प्रकार तीन बार कह कर 'सब जीवों के लिये मुझ से अशेष अभय प्रवृत्त है' (ऐसा कहे।

"सखामागोपायोजः सखायोऽसीन्द्रस्य वज्रोऽसि।
सूत्रम्नः शर्म मे भव यत्पापं तन्निवारयेति" ॥

इस मन्त्र से (अभिमंत्रित) किया हुआ वेणु-दण्ड और कौपीन ग्रहण करे। औषध के समान भोजन करे। जो कुछ मिल जाय, वही भोजन करले। ब्रह्मचर्य, अहिंसा, अपरिग्रह और सत्य की यत्नपूर्वक रक्षा करे ॥३॥ इस के बाद इसी लिये परमहंस परिव्राजकों का आसन और शयन आदि भूमि में हो। ब्रह्मचर्य्य से रहे। यतियों के लिये मिट्टी का पात्र, तुम्बी का पात्र अथवा लकड़ी का पात्र चाहिए। काम, क्रोध, हर्ष, रोष, लोभ, मोह, दम्भ, अभिमान, इच्छा, असूया, ममत्व और अहंकार को भी छोड़ दे। वर्षा के दिनों में एक जगह रहे और आठ महीने अकेले अथवा दो मिल कर विचरे ॥४॥ जो इस प्रकार इस का विद्वान् हो, वह इन सब को यज्ञोपवीत के बाद, अथवा पहले ही छोड़ दे। पिता, पुत्र अग्नि, उपवीत, कर्म, स्त्री और सब कुछ छोड़ दे। संन्यासी भिक्षा के लिये ग्राम में जाते हैं। हाथ अथवा उदर उनका पात्र होता है। ओं हि, ओं हि, ओं हि, इस प्रकार उपनिषद् का विन्यास करे। इस उपनिषद् का विद्वान् जो इस प्रकार जानता है, वह पलास, बेल, पीपल अथवा गूलर के दण्ड को तथा मूँज की मेखला और यज्ञोपवीत को छोड़ कर शूर होता है। विष्णु के उस परम पद को विद्वान् सदा ही देखते हैं उस दिव्यलोक में चक्षु व्याप्त है। वहां पर विद्वान् ब्राह्मण प्रकाशमान हैं, जो विष्णु का परम पद है। इस प्रकार यह निर्वाण की शिक्षा है वेद की शिक्षा है ॥ ५ ॥

भगवच्चिन्तन में चमत्कार

[ले० श्री राधामोहनलाल जी शर्मा]

उत्तिष्ठारात्तरिमें तरणि मम तरी शक्तिरारोहणेका ।
मुग्धे प्रस्तौमि चाहं तरणिमथ स्वीकावधूर्गन्तुमिष्टे ॥
वार्तेयंनौ पुमङ्गे कथमपिनचिता नावयोः सङ्गमाया ।
वार्ताऽपीति स्मिता स्पंजित गिरमजितं राधयाराधयामि ॥

इस दुःखार्णव असार संसार से मुक्त होना जीवात्मा का परम कर्तव्य है। जिसमें भी मनुष्य योनि को शास्त्रकारोंने मुक्ति का द्वार अथवा संसारार्णव से तरने का प्लव (नाव) कहा है। जो कि नृदेह माद्यं सुलभं सुदुर्लभं प्लवं सुकल्पमित्यादि वचनों से वेदित की है। जो जीवात्मा इस मनुष्य शरीर रूपी नाव में सवार होकर भी संसार सागर से नहीं तरता उसको आत्महा कहा है। अतः यह तो सिद्ध हो गया कि संसार से मुक्त हो भगवच्चरणारविन्दों में लय होना मनुष्य देहधारी जीव मात्र का अधिकार और परम कर्तव्य शास्त्रकारों ने बताया है। अब विचारना यह है कि सब से सीधा सुगम और जिसमें चलने का मनुष्य मात्र को अधिकार है ऐसा उत्तम मार्ग कौनसा है जिसमें चलता हुआ पथिक अनायास अपने प्राप्य स्थान पर पहुंच जाय। मेरे शुद्ध विचारानुसार तो यह विदित होता है कि अनन्यभाव से भगवत्स्वरूप का चिन्तन होनाही शीघ्र प्राप्य स्थान पर पहुंचा देने वाला श्रेष्ठ मार्ग है। वह भगवत्स्वरूप का अनन्यभावचिन्तन चाहे जिस प्रकार हो। चाहे काम से क्रोध से स्नेह से किसी प्रकार चित्तैकतानता भगवत्स्वरूप में होने से तन्मयता की प्राप्ति होती है। जैसे- नृणां निःश्रेयसार्थाय व्यक्तिर्भगवतो नृप ।
अव्यक्तस्याऽप्रमेयस्य निर्गुणस्य महात्मनः ॥
कामंक्रोधं भयं स्नेहमैक्यं सौहृदमेव च ।
नित्यं हरौ विदधतो यान्ति तन्मयतां हि ते ॥ श्रीमद्भा०

अव्यक्त अप्रमेय निर्गुण परब्रह्म मनुष्यों के कल्याणार्थ अपने स्वरूप को प्रकट करता है। उस स्वरूप का जो नित्य काम क्रोध भय स्नेह सौहृदादि भावों से चिन्तन करते हैं वे तन्मयता (भगवत्सारूप्यता) को प्राप्त होते हैं। जैसे क्रोध, द्वेष से शिशुपालादिक भगवत्सारूप्यता को प्राप्त हुये, भय से कंसादिक भगवत्स्वरूप में लीन हो गये। भय से कंस को भगवान् कृष्ण के स्वरूप में ऐसी चित्तैकतानता हुई ॥ आसीनः सम्विशंस्तिष्ठन्भुञ्जानःपर्यटन्महीम् ॥ बैठते, चलते, ठहरते, खाते, घूमते कृष्ण ही कृष्ण प्रतीत होते थे। नारद जी ने कहा है।

गच्छंस्तिष्ठन्स्वपन्भाषन् पिबन् भुञ्जन्व्रजंस्तथा ।
कृष्ण कृष्णेति सङ्कीर्त्य मुच्यते पापकन्दुकात् ॥

चलते, फिरते, सोते, पीते, खाते जो प्रतिक्षण कृष्ण कृष्ण सङ्कीर्तन करता है वह पाप से छूट जाता है। सौहृद भाव से युधिष्ठिरादिक भगवद्धामको प्राप्त हुये। स्नेह से वसुदेव, देवकी, नन्द यशोदादिकों का उद्धार हुआ। ये सब भगवान् कृष्ण का पुत्र भाव से ही चिन्तन करते हुये कल्याण के भागी हुये। श्रीमती यशोदा का भगवान् के प्रति पुत्रभाव विश्वविदित ही है।

एक दिन बाललीलाधारी गिरिधारी माखन प्रेमी भगवान् माखन ले कर दौड़े, मैया यशोदा पीछे भाजती है। सूर्य की प्रखर किरणों से व्रजराज सन्तप्त हो रही है। मैया कहती है।

नीतं यदि नवनीतं नीतं नीतञ्च किन्तेन ।
प्रातप तापित भूमौ माधव मा धाव मा धाव ॥

यदि तू ने माखन ले लिया तो ले लिया कुछ बात नहीं फिर लाला व्रजभूमि धूप से तपायमान हो रही है। इसमें तेरे पांव जलते होंगे मत दौड़े। देखो कैसी पुत्र वात्सल्यता है धन्य है। भगवान् ने भी वैसा ही मातृ भाव दिखाया है। श्रीमद्भगवद्गीता में श्री मुख का वाक्य है।

ये यथामां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम् ॥

जो जिस भाव से मेरे प्रति आता है उसको वैसे ही स्वीकार करता हूं। देख लिया भगवान् का मातृभाव जिस समय भगवान् ने अपने वियोग से दुखित व्रजाङ्गना और व्रजवासिओं को आश्वासना देने के लिये उद्धव जी को गोकुल भेजा है। मैया यशोदा के लिये उद्धव के हाथ सन्देशा भेजते हैं।

कौन विधि पावें यह कर्म बलवान उद्धव,
छाछ छछिया की व्रजभामिनी की भात है ॥
मुक्ति हूं पदारथ सो तौ दे चुके बकी को अब,
देहि जननी को काहा बातें पछितात है ॥
विधि जो बनाई आप काहि विधि मेटे ताहि,
ऐसे कर सोचत रहत दिन रात है ।
ऊधो ब्रज जय्यो मेरी कहियो समझाय मैय्यो,
जापे ऋण बाढ़े सो विदेश चलो जात है ।

मैया के भात छछिया के छाछ की याद तो बहुत आवे है पर क्या करें भाग्य बलवान है। मुक्ति सो पदार्थ तो हम पूतना को (जोकि कुचों से विष लगा कर मारने की इच्छा से आई थी) देदिये अब मैय्या को जिसने प्रेम से अपना दूध नित्य हमको पिलाया है कहा वस्तु दें यह सोचते पछिताते हैं। हे उद्धव ? गोकुल जाकर मैया से समझा कर कह दो जो कि मैया का ज्यादा ऋण (कर्ज) हम पै चढ़ाऊ है। जापै ज्यादा कर्ज चढ़ा है वह घर छोड़ परदेश भाग जाय है, तातें हम घर छोड़ भाग आये हैं। देखो भगवान् की भक्त वश्यता ?

एवं सन्दर्शिता ह्यङ्ग हरिणा भक्त वश्यता ।
वशेनाऽपि कृष्णेन यस्येदं सेश्वरं वशे ॥ श्रीमद्भागवत

श्री शुकदेव जी कहते हैं, हे राजन् ! श्री हरि भगवान कृष्ण ने जिनके वश शिव ब्रह्मादिक सब जगत है। इस प्रकार भक्तवश्यता अर्थात् मैं इस प्रकार भक्तों के वश हूं यह दिखाया काम से व्रजाङ्गना भगवान् कृष्ण का चिन्तवन कर कैवल्यपद को प्राप्त हुई। देखिये जिस समय नटवर वेशधारी मदन मोहन विहारी रासलीलाकारी मुरली अधर धारी ने वंशीवट पर वंशी बजाई तो समय व्रजाङ्गना प्यारे की मधुर मुरली धुन को सुन भगवत् कृष्ण के पास जातीं भई उनके पति पुत्र बन्धु आदिकों ने रोका, जैसे गङ्गा नदी समुद्र के मिलने की इच्छा से मार्ग में रोकने वाले पर्वत वृक्षादिकों को तोड़ती फोड़ती समुद्र में जा मिलती है जैसे गङ्गा का प्रेम समुद्र में है तैसे ही गोपी मानो गङ्गा हैं सो कृष्ण रूपी आनन्द के समुद्र में जाने लगीं। रास्ता में पति पुत्रादिक मानों पर्वतादिक तिनको रोके हैं सो रुकी नहीं। उनका तो श्रीकृष्ण में अलौकिक प्रेम है। श्रीकृष्ण को समुद्र रूप से निरूपण किया है वह जल को समुद्र श्री कृष्ण आनन्द को समुद्र वा में अगाधता इनमें गम्भीरता वा में तरङ्ग उठे इनमें प्रेम की तरङ्ग उठें, वा में भ्रमर पड़े यहां नाभि सो ही भ्रमर, वामें मकर हैं, यहाँ कृष्ण के मकराकृति कुण्डल हैं, वा में मीन हैं

यहाँ श्री कृष्ण के मीनवत् चञ्चल नेत्र हैं। यहां रत्न हैं, यहां रत्नजटित आभूषण हैं। यहां शब्द होय है। यहां बाँसुरी को शब्द है। यहां पार उतरने को जहाज है यहाँ भगवान् के चरणारविन्द ही संसारार्णव से पार उतारने के जहाज हैं। यहां डूबे ताको ठिकानो नहीं तैसे ही यहां आनन्द समुद्र में डूबे ताको ठिकाना नहीं। सो इनको प्रेम भगवान् के प्रति पराकाष्ठा को प्राप्त हो गया है अतःलौकिक लज्जादि बन्धन इनका नियामक (अपने नियम में रखने वाला) नहीं हुआ। जैसे जल समुद्र, नदी, तालाब, कूप, बावड़ी आदि जल के स्थानों में ही मिल सकता है सर्वत्र नहीं यह नियम वर्षा ऋतु से अतिरिक्त ही लागू हो सकता है वर्षा में नहीं एवं लज्जादिक बन्धन जब तक प्रेम की पराकाष्ठा नहीं तभी तक लागू हो सकता है प्रेम की पराकाष्ठा में नहीं। अतः सर्व मर्यादा को छोड़ भगवान् के पास प्राप्त होती भई। श्रीभगवान् इनको पतिव्रत धर्म का उपदेश करते हुये व्रज को लौटने का आग्रह करते हैं। परन्तु प्रेम पगी गोपिकाओं के मुख से उत्तर मिलता है।

चित्तं सुखेन भवताऽपहृतं गृहेषु-
यन्निर्विशत्युत कृतावपिगृह्यकृत्ये,
पादौ पदं न चलतस्तव पाद मूलात्-
यामः कथं व्रजमथो करवामः किंवा॥श्रीमद्भा० द.पू.२९

हे भगवन्! आपने सुख पूर्वक ही हमारे चित्तों को अपनी तरफ खींच लिया। अब वह चित्त घरों में और घरों के कार्यों में जाता ही नहीं। आपके चरणारविन्दों से हमारे पैर एक कदम भी अन्यत्र नहीं चलते, कहिये तो सही अब हम कैसे और कहाँ जायं और क्या करें, फिर कहती हैं कि सच्चे पति आप मिलगये तब॥पति सुतादिभिरार्त्तिदैः किम्॥ दुःख देने वाले मिथ्या कल्पित पति पुत्रादि कों से क्या प्रयोजन? श्री भगवान् पूछने लगे कि वे मिथ्या कल्पित पति कैसे हैं। भक्त शिरोमणि व्रजाङ्गना दृष्टान्त द्वारा भगवान् से ही इस प्रश्न के उत्तर का फैसला कराती हैं। सुनिये भगवन्! एक ब्राह्मण की स्त्री अति पतिव्रता थी वह नित्य पृति निजपति की सेवा पूजकर भोजनादि करा शेष बचेका प्रसाद लेती, एक समय ब्राह्मण कार्य वश परदेश जाने को उद्यत हुआ तो वह पतिव्रता बोली भगवन्? मैं आपके बिना दर्शनों के कैसे रहूंगी और आपके बिना भोग आरोगे कैसे प्रसाद पाऊंगी। ब्राह्मण ने उसको अपनी प्रतिनिधिरूप मृत्तिका की एक मूर्त्ति बनाकर दी, और कहा कि जबतक हम न आवें हमारी इस मूर्ति को हमारे तुल्य जान सुपूजा कर भोग लगाकर भोजन पाया करना। ब्राह्मणी ऐसे ही करती रही। बहुकाल पश्चात् ब्राह्मण परदेश से लौट घर को आये तो ऐसे अवसर पर गृह पहुंचे कि जिस समय वह पतिव्रता मूर्त्ति रूपी पति की सेवा में लगी थी। हे प्राणनाथ! वह ब्राह्मणी इस सन्देह में मग्न है, कि मैं माटी के धोंधा पति की सेवा में लगी रहूं या साक्षात् पति जो कि परदेश से हारे थके आये हुये हैं उनको हवा जल, ठण्डाई, आदि सेवा करूं। व्रजाङ्गना पूंछती हैं हे भगवन्! कहिये उस पतिव्रता ब्राह्मणी को अब क्या कर्तव्य है। भगवान् कहते हैं कि अबतो उसका सच्चा पति मिल गया उस पतिव्रता को उसी की सेवा में तत्पर होना चाहिये। मृत्तिका का पति तो उसके अभाव में था, व्रजाङ्गना कहती हैं बस भगवन् श्री मुख से ही

फैसला होगया। जैसे उस ब्राह्मणी को सच्चे पति के मिलने पर मांटी के कल्पित पति की आवश्यकता नहीं रही। इसी प्रकार साक्षात् पति (आत्मदेव) आपके मिलने पर पञ्चभूत देहधारी मिथ्या कल्पित पतियोंसे क्या ? देखिये इसका नाम है प्रेम की पराकाष्ठा सो ऐसी व्रजाङ्गना काम बुद्धि से ही भगवत्स्वरूप का अनन्य भाव से चिन्तन कर परा गति को प्राप्त हुई तो कुछ आश्चर्य है ? भगवद्गीता में भगवान् अर्जुन के प्रति कहते हैं:-

येतु सर्वाणि कर्माणि मयि संन्यस्य मत्परा।
अनन्येनैव योगेन मां ध्यायन्त उपासते ॥१
तेषामहं समुद्धर्ता मृत्युसंसारसागरात् ।
भवामि न चिरात्पार्थ मय्यावेशित चेतसाम् ॥श्रीभ०

हे अर्जुन ! जो मनुष्य सब कर्म मेरे अर्पणकर मत्परायण हो अनन्य भाव से मेरा चिन्तन करते हैं मेरे में आवेशित चित्त वाले ऐसे प्राणियों का मैं शीघ्र ही संसार समुद्र से उद्धार करने वाला होता हूं। भगवान् पुनः कहते हैं।

अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः
तस्याहं सुलभः पार्थ नित्य युक्तस्य योगिनः ॥ श्री० म०

हे अर्जुन ! जो मेरेमें चित्त लगा अनन्य भाव से मेरा स्मरण करता है उसको मैं सुलभ हूं अर्थात् सुगमता से प्राप्त होजाता हूं। मुझमें आवेशित चित्त वाले प्राणी की सब वासना क्षय होजाती हैं। पुनः वह संसार में जन्म धारण करने को समर्थ नहीं हो सकता जैसे भुने हुये, क्वथित हुये जौ कुर्व-द्रूप (अंकुर) जनने की शक्ति नहीं रखते

न मय्यावेशितधियां कामः कामाय कल्पते ।
भर्जिताः क्वथिता धानाः प्रायो बीजाय नेष्यते ॥ श्री०भद्रा०

मेरे लेख का सारांश यह है कि क्रोध, भय, स्नेह, सौहृद कामादि किसी प्रकार से भगवत्स्वरूप में चित्तैकतानता होनी चाहिये बस कल्याण होने में देर नहीं। पाठक यह न समझलें कि भगवान् के प्रति क्रोध द्वेष करना भी अच्छी भक्ति है क्योंकि इनसे भी कल्याण होजाता है। इसका उत्तर एक दृष्टान्त द्वारा समर्पण करता हूं। एक महात्मा नदी के तट पर सन्ध्यादि नित्य कर्म करने के लिये बैठे थे उस समय एक बिच्छू नदि के प्रवाह में बहा जाता था, सन्तों का चित्त दयालु तो होता ही है। उसको देख हाथ से उठा कर जल से निकालना चाहा बिच्छू ने अपने दुष्ट स्वभाव के अनुसार महात्मा के हाथ में डंक मारा तो महात्मा के हाथ में पीडा होने से वह बिच्छू जल ही में गिरगया। फिर भी महात्माने उसे जलसे उठा निकालना चाहा फिर भी उसने डंक का प्रहार महात्मा के हाथ पर किया इसलिये फिरभी जल में गिरगया इसी प्रकार कई बार होने पर भी अन्त में महात्माने उसे जलसे निकाल ही लिया और उसके प्राण बचाये। लोगों ने महात्मा से पूछा कि इस दुष्ट ने बार२ आपके डंक मारा फिर भी आपने इसके ऊपर दया कर इसके प्राणों की रक्षा ही की। सन्त कहते हैं भाई ! इसका दुष्टताका स्वभाव है जो इसने अपने स्वभाव को नहीं छोड़ा तो हम अपने स्वभाव को कैसे छोड़ें। इसी प्रकार दुष्ट प्राणी अपने दुष्ट स्वभाव से भगवान् के प्रति क्रोध द्वेषादिको नहीं छोड़ते तो दयालु भगवान् ही अपने दयालु स्वभाव को कैसे त्यागेंगे एसों का भी उद्धार ही करेंगे। इस-लिये क्रोध द्वेषादि करने वालों का भी जब उद्धार होता है तो प्रेम से भगवान् के स्वरूप का ध्यान करने वालों का कल्याण हो तो इस में कहना ही क्या !

मूढ़ मन निराश न हो

रे मन! कितना सुझाया-बुझाया किंतु तू अपना हठ नहीं छोड़ता, बार २ संशय सिंधु में डुबकियाँ लगाया करता है। अच्छा अब तू ही विचार कि तेरी हानि लाभ क्या है, यदि तू मृग-तृष्णा से जल की आशा रखता है, विष-पान करके अमर हुवा चाहता है तो यह केवल तेरी दुराशा मात्र है। अगर वास्तविक सुख चाहता है तो जो पथ श्रुति-पुराण तथा सन्तों ने निर्धारित किया है, उसी का पथिक बन। वह पथ है क्या? इसका उत्तर केवल हरि भक्ति तथा हरि चरणाश्रय ही हो सकता है। इसी को पालेना आनन्द सागर को पाना है तथा इसके विपरीत विपत्ति ही विपत्ति है जैसा कि भक्तवर हनुमान् जी ने भगवान् से सुख-दुख का निर्णय करते हुए कहा है:-

कह हनुमन्त ···प्रभुसोई। जब तव सुमिरन भजन न होई॥

कभी यह बात तेरे हृदय में आई है कि प्रभु को भुला देना महा दुःख है। मैं तो कहूंगा कि उस दुःख को परम प्रिय मित्र की भाँति भेंट जिसमें (प्रभु) पर विश्वास बढ़ता अथवा बार स्मरण होता है और उस सुख-भोग का सौ शत्रु की भांति त्याग करना उचित है जिसमें तू अपने हृदय धन को खो बैठता है।

इस संसार दलदल में फसा हुवा तू अपने पुरुषार्थ के भरोसे निकला चाहता है जो अति दुष्कर है, यों तो तू बार २ कूदें फांदेगा, परन्तु सब निष्फल होगा, एक पैर थोड़ा सा ऊपर उठायेगा दूसरा कई गुना अधिक नीचे धंस जायगा। यदि निकला ही चाहता है तो वहीं हरिचरणों में लोट जा, बिल्कुल ही बल मत लगा, फिर तो देखते २ तू किनारे आ लगेगा, अरे भगवान् रामचन्द्र के ये वचन कितने भरोसे के हैं।

सुनु मुनि तोहि···सहरोसा। भजत···भरोसा॥
करौं सदा···रखवारी। जिमि बालक पालै महतारी॥

उनकी शरण होकर तू वैसा ही निश्चिन्त हो जायगा जैसे छोटा बच्चा अपनी माता की सुखद गोद में। वे चिंतामणि तुझे चिंताओं से मुक्त कर देंगे। खोटे से खरा बना देंगे। अभागे से भाग्यमान, अधिक क्या तू विष से अमृत बन जायगा। केवल भरोसा तथा दृढ़ विश्वास की आवश्यकता है। तुझे यह शंका हो सकती है कि हरि चरण कहाँ मिलेंगे, सो इसके लिये 'कलियुग केवल नाम अधारा' का सिद्धान्त मानना पड़ेगा। इस युग में केवल नाम ही गति है जिसने नाम की शरण ली उसने सचमुच नामी को पालिया। गुसाईं जी के ये वचन सुनः-

जोगु जोग-ग्यानु ग्यान-बिरागु बिराग-जप तप संजमु दमु दानु।
तुलसी जानि तुलसीदास निसिबासर हरि पद कमल बिसारहि॥

कितना सहज तथा साथ ही उत्तमोत्तम साधन है इस में किसी विद्या-बुद्धि-ज्ञान, वैराग की आवश्यकता नहीं, यदि है तो केवल निरन्तर स्मरण तथा सच्ची लगन की। सच्चे दिल से जो नन्द-किशोर को रिझायेगा, उससे वे अवश्य रीझेंगे। और यदि ऐसे मन सुख के लिये थोड़ा कष्ट भी उठाना पड़े, आत्मसंयम भी करना पड़े तो क्या हानि है। संसार के तो प्रायः प्रत्येक काम में तू (मन) हानि और दुःख उठाता है।

फिर तुझे कदाचित् अपने बड़े पापों तथा दुर्बलताओं के कारण डर हो और निराश होना पड़े

तो इसके लिये भी सुन-महाराज तुलसीदास क्या कहते हैं:-

कैसेउ आमर···नाम की ओट ।
गांठी बांधरे रामसों परको न फेरिहर खोट ॥

इस जगत के मनुष्यों की तरह प्रभु अपने हानि-लाभ को नहीं देखते अपने शरणागत को कैसा भी क्यों न हो अपना ही लेते हैं उन्हीं के ये वचन हैं:-

कोटि विप्र वध लागहि जाहू, आये शरण तजौं नहिं ताहू ॥

ऐसे कृपाल हैं कि अपने (शरणागत) भक्त को कभी भी नहीं हटाते, बड़े प्रेम से उसे अपनाते हैं, तनिक भी उसके दुगुणों की ओर नहीं देखते, उल्टे पतित से पुनीत करते हैं। इसी से तो उन्हें वेदों ने भी अशरण-शरण, पतितपावन आदि नामों से पुकारा है। तुम्हारे जैसे अनेकों पापियों को तार दिया, बस यदि इसका अनुभव करना है तो इसी क्षण से संकल्प करले, अभी कुछ नहीं बिगड़ा है, अभी से निशंक हो के हरि-पद-कमल में माथा नवादे अरे एक क्या अनेकों जन्म की बिगड़ी पल मात्र में बन जायगी।

बिगरी जन्म अनेक···अबहीं आज ।
होहु राम कर राम भजु, तुलसी तजि कुसमाज ॥

आगा पीछा सोचने से कुछ नहीं होगा, यदि हित चाहता है तो विषयों से मन हटा, कुसंगति छोड़ केवल हरि तथा हरि भक्तों की शरण ले, फिर तो थोड़े ही समय में चैन की वंशी बजायेगा। बस थोड़ी देर और शांति रख, एक बात कह के फिर तुझ से कभी न कहूंगा। श्री कृष्ण भगवान् अपने भक्त को अपने यहां क्या स्थान देते हैं, इस पर कभी विचार किया है, यों तो उन्हें ज्ञानी, तपस्वी तथा योगी सभी प्रिय हैं किन्तु अपने शरणागत भक्त को कहते हैं कि:-

योगिनामपि सर्वेषां मद्गतेनान्तरात्मना ।
श्रद्धावान् भजते यो मां स मे युक्ततमो मतः ॥

इसे तो भगवान् ने अपना हृदय तक कहा है भक्त से प्रिय उन्हें तीनों लोक में कोई नहीं है भक्त के हाथ तक में बिकने को वे तैयार रहते हैं। उसकी सारी जिम्मेवारी अपने ऊपर लेते हैं जैसा कि इस श्लोक से विदित है।

सर्व धर्मान् ·····मामेकं शरणंव्रज।
अहं त्वां ····· माशुचः ॥

मेरा तुझ से बार २ इतना फुसलावा, इतनी प्रार्थना क्यों? केवल इसी स्वार्थ वश कि इस अमूल्य अवसर के हाथ से निकल जाने पर तुझे केवल हाथ मलना ही हाथ लगेगा फिर तो रोने धोने से भी कुछ नहीं होने का। यह सुर-दुर्लभ मानव शरीर को देख कर हमें तरस आती है कि इसे पाकर भी तू ने ऐसे दयालु, प्रेमी, तथा आशुतोष भगवान् को नहीं सुना, हमें यदि दुख है, तो केवल इसी बात का।

हा ! नरसमान नहिं कवनउदेही ।
जीव चराचर··· ··· ··· जेही ॥
ज्ञान विराग··· ··· ··· देनी ।
नरक स्वर्ग··· ··· ··· निसेनी ॥
सो तनुधरि हरि··· ··· ···जेनर ।
सेव विषय रत··· ··· मन्दमन्दतर ॥
काच कीनि बदले ··· ···· लेही ।
करते डारि··· ··· देही ॥

तो क्या तू सचमुच पारसमणि को कांच से बदला चाहता है। मुझे डर है, चाहे तू अभी स्वीकार भी करले किन्तु तेरी बहुत जन्मों से विषयों के

और झुकने की बान पड़ गई है तू सारहीन है, बात तुझे आती नहीं गुसाईं जी ने तेरे ही लिये शायद यह पद कहा है।

वेद पुराण ..... रघुनाथ सकल ना चाखी।
बेचत नहिं .....वणु इव सारहीन मनपाखी॥

किन्तु फिर भी विश्वास रख जो रोग होता है उसकी दवा भी न होती है तेरे इस कुरोग की दवा एक मात्र फिर कहता हूं केवलनाम का आश्रय लेना है और सब समय तू अपने को प्रभु के चरणों में पड़ा हुवा जान, हीन बनजा अपनी पुरानी ऐंठ छोड़ दे। यदि ऐसा करता है तो अपना जीवन सुफल हुवा जान, माता भी अपनी कोख धन्य समझेगी अन्यथा तू भार रूप है, तेरा जीवन इस संसार में कूकर-शूकर से भी व्यर्थ जाना जायगा।

विनय

(ले० श्री प्रभुदेव ब्रह्मचारी)

हरी अब हरो दास की पीर॥
बहु बाधी अब सही न जात है सुनिये हे रघुवीर।
बेग नाथ अब पार उतारो नियरे भव के तीर॥ १॥
जग पयोधि में लहर उठत हैं झक झोरत हैं नीर॥
संसारात चहुं दिसि घोरा व्याकुल चित्त अधीर॥ २॥
पहले भी महाराज आपने हरी मकन की भीर।
निरखि रावरी विरुदावलि यह धरत नहीं चित धीर॥३॥
दयानिधे दयनीय दीन पर करो दया बलवीर।
शरणागत प्रभु दास तिहारो सुन्दर श्याम शरीर॥ ४॥

सत्य

(लेखिका श्रीमती.....)

सन्ध्या का सुहावना समय है मन्द २ समीर चित्त को प्रसन्न करती हुई चल रही है मनुष्य दिन भर व्यवहारिक कार्यों से निवृत्त हो कर अपने २ निवास स्थान को गमन कर रहे हैं। अनेक मनुष्य वायु-सेवन के निमित्त उपवन वाटिका आदि की ओर अग्रसर हो रहे हैं। श्री परम पावनी गंगाजी भी मानो दिन भर की लहरों से थक कर झकोरों की थकावट को दूर करके विश्राम करने की चिन्ता में कुछ धीमी गति से गमन कर रही हैं। ऐसे ही मनोहर समय में दो मित्र एक पुष्पवाटिका में बैठ कर वार्तालाप करने लगे। इनमें से एक का नाम नारायण दास तथा दूसरे का सुन्दरलाल है इन दोनों में निम्नलिखित वार्तालाप आरम्भ हुआ।

सुन्दर लाल– भाई नारायण दास मैं बहुत काल से इस उलझन में पड़ा हुआ हूं कि वास्तव में सब से बड़ा धर्म कौनसा है? अनेक मनुष्यों से पूछा कई महात्माओं से निवेदन किया सहस्रों पुस्तकें उलट पलट डालीं परन्तु कोई सन्तोषजनक उत्तर नहीं मिला सब अपनी २ मत के अनुसार बतलाते हैं परन्तु मुझे सन्तोष नहीं हुआ अब यदि तुम मेरी समस्या हल कर सको तो मैं बड़ा ही अनुग्रहीत होऊंगा।

नारायण दास- भाई जी आपका विचार अच्छा है इसका उत्तर आपको सन्तोष जनक न मिला इसका कारण वास्तव में यह मालुम होता है कि आपने किसी के कथन पर श्रद्धा सहित ध्यान न दिया प्रथम किसी विषय के श्रवण में श्रद्धा की अति आवश्यकता है अभी आपने किसी पर श्रद्धा सहित ध्यान देकर विश्वास करने का उद्योग नहीं किया और न आपको कोई श्रद्धा करने योग्य मनुष्य मिला क्योंकि जब तक वक्ता श्रोता का चित्त अपनी ओर आकर्षित पूर्ण रूप से न करले और श्रोता पूर्ण श्रद्धा सहित श्रवण मनन न करे तब तक उस उपदेश का कोई फल नहीं होता है चलो आज मैं तुमको एक सन्त के दर्शन निमित्त ले चलूंगा और उन्हीं से आप के प्रश्न का उत्तर पूछूंगा यदि ईश्वर की कृपा होगी तो शीघ्र ही आपकी समस्या हल हो जावेगी क्योंकि मैं अल्प बुद्धि आपके उत्तर में समर्थ न हो सकूँगा वे ऐसे शान्त तथा गंभीर हैं कि आप को केवल दर्शन मात्र से उन पर श्रद्धा उत्पन्न हो जावेगी और उनके वचनामृत को श्रवण करने से चित्त उनकी ही ओर आकर्षित हो जावेगा।

सुन्दर लाल- भाई मैं तो इन बातों को पसन्द नहीं करता क्योंकि आज कल अधिकांश सन्त महात्मा सिर्फ संसार ठगने और अपना चमत्कार दिखा कर मनुष्यों को फांसने का ही रोज़गार करते हैं मुझे संन्यासियों पर तनिक भी श्रद्धा नहीं होती है जहां इन लोगों के पास बैठो बस संसार छोड़ बैठने का ही उपदेश मिलेगा प्रथम तो लोभ, मोह, काम, क्रोध, अहंकार को त्याग नहीं सके संसार त्यागने से क्या फल ?

नारायण दास- भाई बस करो मैं आपके विचार से सहमत नहीं आपको इस प्रकार एक लकड़ी से सबको हांकना उचित नहीं संसार में सब प्रकार के जीव हैं सबको एक सा बताना कहां तक ठीक है हां कंकड़ों के ढेर में हीरा पहचानना ज़रा कठिन है अवश्य परन्तु यह कह देना कि "पृथ्वी पर हीरे का अस्तित्व ही नहीं है अथवा पैदा ही नहीं होता" महा मूर्खता है मैं आपसे प्रार्थना करता हूं कि आज मेरे साथ चल कर मेरी बात की सत्यता की परीक्षा कर लीजियेगा।

सुन्दर लाल- अच्छा भाई माफ करो यदि आपकी बात सत्य है तो मैं आपके साथ चलने को प्रस्तुत हूं, चलिये।

नारायण दास- बहुत अच्छा चलिये ईश्वर आपको सुमति प्रदान करे।

इतना कह कर नारायणदास ने सुन्दर लाल का हाथ प्रेम पूर्वक पकड़ लिया और दोनों मित्र पूर्व दिशा की ओर अग्रसर हुए। थोड़ी दूर जाने पर एक बड़े बगीचे में सुन्दर पर्ण कुटी दृष्टि गोचर हुई उसमें प्रवेश करने पर एक संन्यासी महात्मा के दर्शन हुए। उन्हें देखते ही सुन्दर लाल का चित्त प्रसन्न होगया, सादर दण्डवत प्रणाम करके दोनों एक ओर बैठ गए संन्यासी जी अन्य भक्तों से वार्तालाप समाप्त करके नारायण दास की ओर देख कर बोले कि कहो आज इस समय तुम्हारा आगमन किस कारण हुआ नित्य तो केवल प्रातःकाल ही आया करते थे आज कुछ विशेष कारण जान पड़ता है यह तुम्हारे साथ तुम्हारे मित्र जान पड़ते हैं।

नारायण दास- (हाथ जोड़ कर) स्वामी जी आपका कथन सत्य है यह मेरे सुहृद मित्र सुन्दर लाल हैं। आज आपके दर्शन के निमित्त यहाँ आपको

सेवा में उपस्थित हुए हैं, इनकी इच्छा आपकी सेवा में कुछ निवेदन करने की है आज्ञा हो तो कहें।

संन्यासी जी– हां अवश्य कहो ईश्वर चाहेगा तो तुम्हारा सन्देह शीघ्र नष्ट हो जावेगा।

सुन्दर लाल– (नम्रता से) महाराज ! मेरी इच्छा थी कि सब से उत्तम धर्म की खोज करूं सो बहुत काल व्यतीत हो गया परन्तु न कर सका अब दया करके आप मेरे समीप वर्णन करिये कि सबसे उत्तम धर्म कौनसा है।

संन्यासी जी– सुन्दर लाल तुम्हारा प्रश्न अत्यन्त सुन्दर है मैं यह सुन कर तुम से अति प्रसन्न हुआ अब मैं तुमसे उत्तम धर्म का वर्णन करता हूं ध्यान देकर श्रवण करो और उसके अनुसार चलने का उद्योग करो।

सत्य समान धर्म नहिं दूजा

अर्थात् सत्य के समान कोई धर्म नहीं है। सत्य धर्म सब धर्मों से उत्तम है इसके अनगिनत प्रमाण भी हैं प्रथम तो रामायण में ही लीजिये अयोध्या कांड में लिखा है:–

नहिं असत्य सम पातक पुंजा ।
गिरि सम होहिं कि कोटिक गंजा ॥
सत्य मूल सब सुकृत सुहाए ।
वेद पुरान विदित मुनि गाए ॥

असत्य के समान तमाम पापों का झुन्ड भी नहीं हो सकता जैसे कि चिरमिठी के समान पहाड़ नहीं हो सकता अथवा यों कहो कि चिरमिटी का झुन्ड पहाड़ की बराबरी नहीं कर सकता इसी तरह तमाम पाप मिल कर असत्य की बराबरी नहीं कर सकते। असत्य का पाप पर्वत के समान बड़ा है और सत्य सब धर्मों की और अच्छे कामों की जड़ है यह वेद पुराण में प्रकट है और मुनीश्वरों ने भी गाया है अब महाभारत में भी देखो श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्द ने अपने श्रीमुख से द्रोण पर्व अध्याय १८१ के २७ वें श्लोक में कहा है:–

धर्मसंस्थापनार्थं हि प्रतिज्ञैषाममाऽव्यय ।
यत्र सत्यं दमः शौचं धर्मो ह्री रतिक्षमा ॥

अर्थात् धर्म की स्थापना के लिये मेरी प्रतिज्ञा है कि जहां सत्य शम, दम, पवित्रता, धर्म, श्री, धैर्य, क्षमा इत्यादि का व्यवहार होता है वहीं २ मैं सदैव निवास करता हूं यह मैं शपथ खाकर कहता हूं और भी प्रमाण देखो महाभारत उद्योग पर्व विदुर नीति ३४ वें अध्याय में ३७ वां श्लोक:–

सत्येन रक्ष्यते धर्मो विद्या योगेन रक्ष्यते ।
मृजया रक्ष्यते रूपं कुलं वृत्तेन रक्ष्यते ॥

अर्थात् सत्य से धर्म की, अभ्यास से विद्या की, उपटन से रूप की, चरित्र से कुल की रक्षा होती है।

सत्य की आवश्यकता केवल परमार्थ में ही नहीं वरन् व्यवहार भी सत्य बिना नहीं चलता जैसे व्यापार इत्यादिक में झूंठ से नाना प्रकार के उपद्रव होते हैं। असत्य से संसार में हर स्थान में से विश्वास उठ जाता है और यथार्थ बात प्रकट होने पर लज्जित होना पड़ता है, इस तरह असत्य परलोक को तो बिगाड़ने वाला है ही वरन इस लोक में भी कष्ट दायक है। आपने कभी शायद अनुभव भी किया होगा कि असत्य लाभ की आशा से बोलने तो गए लेकिन बोलने से पहले भी चिन्तित, बोलने के समय भी हृदय में घबराहट और बोलने के बाद भी अफसोस

सा रहता है। यदि विवेक से काम लें तो यह स्पष्ट मालूम होसकता है। वैसे ऊपरी चाहे जितनी प्रसन्नता हो परन्तु अपने अन्तःकरण के शुद्ध भाव से पूछो तो अवश्य मालूम हो जावेगा और इसके विपरीत सत्य बोलने के समय भी निर्भय और बोलने से पहले भी चित्त प्रसन्न और बोलने के पीछे भी चित्त प्रसन्न, निर्मल और शान्त होजाता है। जिस स्थान पर सत्य है वहां स्वयं भगवान् कृष्ण चन्द्र निवास करते हैं और सत्यवादी की रक्षा में तत्पर रहते हैं। सब से प्रथम भगवत् प्रिय बनने का सुगम साधन यही है इस समय एक छोटा सा दृष्टांत याद आगया सो कहता हूं।

एक बालक कहीं नौकरी की खोज में एक स्थान से दूसरे स्थान में जाने लगा तो उसकी माता ने उसके कोट के अन्दर चालीस मोहरें सी दीं और कहा कि हे पुत्र! यह द्रव्य समय पर काम में लाना और कभी चाहे जितना कष्ट पड़े असत्य भाषण न करना यह मेरी आज्ञा है, इसकी अवहेलना कदापि न करना ईश्वर तुम्हारी सदैव रक्षा करेंगे। पुत्र मातृ आज्ञा को शिर पर धारण करके चल दिया रास्ते में एक स्थान पर रात्री होजाने के कारण ठहर गये वहां उस स्थान पर कुछ डाकू लुटेरे आगए और उसके साथियों को लूट लिया। बाद में एक डाकू ने लड़के की तलाशी ली परन्तु उसके पास कुछ न निकला तो छोड़ दिया और फिर पूछने लगे कि "क्या तेरे पास कुछ भी नहीं है। सत्यवादी लड़के ने तुरन्त उत्तर दिया कि मेरे पास ४० मोहरें हैं। डाकू ने समझा कि यह हंसी कर रहा है फिर अपने सरदार से जाकर कहा कि यह लड़का इस प्रकार कहता है। सरदारने तुरन्त बुलवा कर यही प्रश्न किया और लड़के ने यही उत्तर दिया। तब सरदार ने पूछा कि कहां पर हैं? लड़के ने कोट की ओर संकेत किया तब डाकुओं ने उसके वस्त्र को रत्ती २ ढूंढ डाला परन्तु पता न चला तब सरदार ने कहा कि तुम्हें निकाल कर बतलाओ। लड़के ने तुरन्त सिलाई तोड़ कर ४० मोहरें सरदार के सन्मुख रख दीं। सरदार आश्चर्ययुक्त होकर बोला कि तुमने यह द्रव्य क्यों बतलाया यदि तुम हमको न बतलाते तो हम लाख प्रयत्न करने पर भी न ले सकते। लड़के ने उत्तर दिया कि मेरी माता ने मुझसे चलते समय कह दिया था कि "तुम असत्य कदापि न बोलना चाहे जितना कष्ट तुमको सहन करना पड़े ईश्वर तुम्हारी सदैव रक्षा करेंगे" फिर भला अपनी माता की आज्ञा का उल्लंघन कैसे कर सकता था। यह सुन कर सरदार के हृदय के नेत्र खुल गए और अति पश्चाताप करके कहने लगा कि देखो यह बालक अपनी माता की आज्ञा का इतना आदर करता है और मैं वृद्ध होकर भी उस परम पिता जगदीश्वर की आज्ञा का आदर न करके चोरी डकैती असत्य भाषण आदि कुकर्म करता रहता हूं। आज से यह बालक मेरा गुरु हुआ इसने ही मेरे नेत्र खोल दिये अब तक मैं दो नेत्र होते हुए भी अन्धा था आज मैं वास्तव में नेत्रवान हुआ यह कह कर उसने बालक को असीम धन देकर विदा किया और शेष धन दुःखी, दरिद्रों, निर्धनों को बांट कर अपने सब साथियों सहित भगवत् भजन में लीन होगया।

इस प्रकार तुमने देख लिया कि एकबार सत्य बोलने का इतना बड़ा प्रभाव पड़ा। फिर यदि सदैव सत्य भाषण किया जावे तो कितना उत्तम हो यह तो एक

एक छोटा सा दृष्टांत है यदि और धार्मिक पुस्तकों में आप देखेंगे तो असंख्यों प्रमाण इस के मिलेंगे मर्यादा पुरुषोत्तम श्री रामचन्द्र जी महाराज के पिता राजा दशरथ ने सत्य के ही कारण अपने प्राणाधिक पुत्र को वनवास भेज कर स्वयं प्राण-त्याग दिये इसी तरह सत्यवादि हरिश्चन्द्र ने सत्य के निमित्त राज पाट धन दौलत यहाँ तक कि पुत्र स्त्री तक का त्याग कर दिया और सत्य को न छोड़ा केवल सत्य के ही प्रताप से इन्होंने आसुरी संपत्तियों में जय पाई और अन्त में परम पद के अधिकारी हुए सत्य के ही अवलम्बन से जय होती है कहा भी है "सत्य मेव जयते नानृतम्"।

महाराज युधिष्ठिर इसी सत्य के प्रभाव से धर्म राज नाम से विख्यात थे और सत्य के ही प्रताप से उनका रथ सदैव पृथ्वी से एक अंगुल ऊंचा रहता था जब महा भारत के युद्ध में श्री कृष्ण चन्द्र की आज्ञा से उन्होंने एक बार असत्य भाषण 'अश्वत्थामा मर गए" यह कहा (अश्व-त्थामा हाथी का भी नाम था वह मरगया) इसी असत्य पातक के भार उनका रथ पृथ्वी स्पर्श करके चलने लगा। असत्य भाषण बहुत भारी पाप है इस लिये हमको चाहिये कि असत्य को त्यागकर सत्य धर्म का संचय करो यही हमारे इह लोक तथा पर-लोक में काम आवेगा। यह सबसे सुगम धर्म मुक्ति पथ का प्रदर्शक है इस इसलिये आजसे हमको प्रतिज्ञा करनी चाहिये कि सत्य में ही निमग्न हो जावें, असत्य-मिथ्या का चिन्ह भी संसार से मिटादें तभी हमको सत्य का आनन्द प्राप्त हो सकेगा, वरना इसी मिथ्या संसार में भटकते२ आयु पूर्ण होजायगी और यह सुअवसर फिर मिलना कठिन होजायगा जो कि दीनानाथ ने दया करके हमको मनुष्य जीवन प्रदान किया है इसमें संम्पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने की सामर्थ्य है अन्य योनियों में फिर कुछ धर्मा धर्म का ज्ञाना न रह जावेगा और कष्टमय जीवन व्यतीत करना होगा। इस वास्ते इस सुवर्ण अवसर को हाथ से न जाने दें, शीघ्र उद्योग करें और सत्य, सर्वगत निर्विकार ब्रह्म के चिन्तन में समय व्यतीत करें मिथ्या का त्याग कर दें। इसी से हमको असीम शान्ती मिलेगी इसमें कोई सन्देह नहीं। जगदीश्वर से प्रार्थना है कि वे हम सब को कृपा करके अपने सत्य मार्ग पर अग्रसर होने में समर्थ करें।

सुन्दर लाल ने ध्यान पूर्वक उपरोक्त उपदेश श्रवण किया और अन्त में उठ कर सन्त के चरणों गिर पड़ा प्रेमाश्रु से उनके दोनों चरण भीग गए और उन्होंने सुन्दर लाल के मस्तक पर हाथ रख कर शुभाशीर्वाद दिया कि जगदीश्वर तुम्हें सुमति प्रदान करे, अपने विचार पर दृढ़ रहना, सदैव सत्य का पालन करना और जब कोई शंका चित्त में आवे उसका निवारण करने का उद्योग करना।

नारायण दास ने देखा कि मेरा मित्र सुमार्ग पर आगया है और प्रसन्न है तब वह भी प्रफुल्ल वदन होकर सन्त के चरणों पर मस्तक टेक कर मित्र सहित अपने स्थान को चल दिया।

प्रिय पाठकगण! इस छोटे से लेख से यदि आप लोग अपना थोड़ा सा समय भी सत्य के गुणानुवाद में व्यय करेंगे तो मेरा लिखना सार्थक हो जावेगा।

———

अवतार जीवन में साधक भाव और श्रीराम-कृष्ण

[ले० श्री स्वामी मेधेश्वरानन्द जी]

भगवान् बुद्ध और श्रीचैतन्य के सिवाय और किसी भी अवतारी पुरुष के साधक जीवन का इतिहास हमें नहीं मिलता। हम नहीं जानते कि किस तरह से यशोदा के लाल, व्रज बालकों के प्राण कन्हाई वंशीध्वनी सेव्रज वनिताओं के चित्त को हरणे वाले श्रीकृष्ण, एकादक गीता वक्ता जगत् गुरु भगवान् श्रीकृष्ण के रूप में प्रकट हुए। भगवान् श्रीकृष्ण की बालकसुलभ चपलता के बीच में उनकी कुछ कुछ अलौकिक क्रियायें देख पड़ती हैं सही और इससे यह भी मालुम होता है कि यह बालक साधारण बालक की भाँति नहीं थे इनमें असाधारण शक्ति का प्रकाश बचपन से ही था यह नित्य सिद्ध होकर जन्मे थे। परन्तु तोभी चित्त में इसी प्रश्न का उदय होता है कि जिस अमानुषिक आध्यात्मिक शक्ति का बीज भूमिष्ठ होने के बाद ही इस बालक में देख पड़ता था वह बीज किस प्रकार से धीरे धीरे वृक्ष रूप में परिणत होकर फल और फूलों से परिशोभित होते हुए गीता वक्ता भगवान् श्रीकृष्ण रूपी विराट अध्यात्मिक महीरुह की न्याई प्रकट हुआ। यदि इस तरह से विचार किया जाय कि भगवान् श्री कृष्ण स्वयं भगवान थे–"कृष्णस्तु भगवान् स्वयं" अतः उनको साधन भजन की आवश्यकता ही क्या है? जन्म धारण से लेकर देहान्त तक उनकी तमाम मनुष्योचित चेष्टायें लीला मात्र ही हैं, वे सब हमें दिखाने के लिये ही हैं परन्तु वास्तव में वे भगवान ही थे। यह बात कुछ कुछ ठीक है। परन्तु स्वयं भगवान् ही जब मनुष्य शरीर धारण करके अवतीर्ण होते हैं तब उनको माया को आश्रय करके ही ही वैसा करना पड़ा है। भगवान् ने स्वयं ही गीता में कहा है:–

अजोपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपि सन्।
प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय सम्भवाम्यात्ममायया ॥

जन्म रहित और अक्षय विवर्जित आत्मा और प्राणियों के ईश्वर अर्थात् कर्म-बन्धनों के परे होन पर भी मैं अपनी प्रकृति में अधिष्ठित होकर अपनी माया वश जन्म लिया करता हूं। अतः माया-वश शरीर धारण करने के कारण अवतारी पुरुष में लेश अविद्या भी रहती है। भक्ति शास्त्रों में अवतारी पुरुषों को शुद्ध सत्व-विग्रह कहते हैं। और यों भी हमें मालुम होता है कि अवतारी पुरुषों में साधारण जीव की तरह पूर्व संस्कार नहीं रहता और इसीलिये हम जैसे हजारों वासना वश अध्यात्मिक सत्य को उपलब्धि करने में जल्दी मनको एकाग्र नहीं कर सकते वैसे उनके लिये नहीं होता। उनका संसार-वर्जित मन तुरन्त ही सत्योपलब्धि करने में एकाग्र हो जाता है और वे जल्दी परमार्थ सत्य को लाभ करके आत्मस्थ होजाते हैं। एक बात और है। हम साधरण जीव जन्म लेने के पश्चात् इन्द्रियों में रूपरसादि विषयों का भोग करते हुए पूर्व संस्कार वश इस जगत को ही सत्य समझ लेते हैं। पर अवतारी पुरुष जन्म लेने के पश्चात् इन्द्रियों से विषयों को भोगते तो हैं

परन्तु साथ ही साथ उनके काम-संकल्प-वर्जित मन में भाव राज्य की उपलब्धि भी आप ही आप समय समय पर आजाती हैं। अब भाव-राज्य की इन उपलब्धियों और इन्द्रिय-ग्राह्य भूत् जगत् इन दोनों के बीच में खड़े होकर वे समझ नहीं सकते कि कौन सत्य है-भावमय अन्तर्गत या इन्द्रिय ग्राह्य बहिर्जगत्! वयोवृद्धि के साथ वे देखते हैं कि यह भूतजगत् सदा परिवर्तन शील है और जो अतीन्द्रिय उपलब्धियाँ उन्हें आपही आप मिलती हैं उनमें ज़ियादह आनन्द रहते हैं अतः वे इस मर जगत् से मन उठाकर इसके परे क्या है यह जानने के लिये तत्पर हो जाते हैं। एक बात और है ऐकान्तिक चेष्टा से अन्तर्जगत के तत्वों को उपलब्धि करने पर भी कोई भी मनुष्य इन्हीं को चरम सत्य बोल कर ग्रहण नहीं कर सकता। परन्तु अपनी उपलब्धियों को शास्त्र और गुरु वाक्यों से मिलाना पड़ता है। अब साधक की अपनी उपलब्धियां शास्त्र और गुरु वाक्य से मिलकर एक होजाती हैं तभी वे संशयरहि-होकर परमार्थ सत्य में प्रतिष्ठित हो जाते हैं। भगवान शुकदेव जी के जीवन से यह हमें स्पष्टतया प्रतीत होता है। परमहंसों में श्रेष्ट मायारहित भगवान शुकदेव जी के संस्कार वर्जित चित्त में आध्यात्मिक सत्य बचपन से ही प्रतिभात होता था। पीछे शास्त्रों को पढ़कर जब आपने देखा कि शास्त्रों में जो कुछ लिखा हुआ है वह सब आप उपलब्ध कर चुका है। परन्तु तो भी उनका मन निः संशय नहीं हुआ। अपने पिता जी भगवान् वेदव्यास जी को जब आपने यह कहा तब व्यास जी ने सोचा कि यह सोचते हैं कि मैंने पिता होकर अपत्य स्नेह वश इसे परमार्थ सत्य का उपदेश नहीं किया काल इसे उत्साह देने के लिये ही उन्हीं शास्त्रों को पढ़ाया है कि जिनसे अपनी उपलब्धियां मिल जाय परन्तु वास्तव में यह चारम सत्य की उपलब्धि कर चुका है तो भी इसका संशय नहीं गया। अतः इसे दूसरे किसी प्रसिद्ध गुरु के पास भेजना चाहिये। ऐसा सोचकर आपने पुत्र को जनक विदेह के पास भेजा। वहाँ जाने के बाद राजर्षिजनक ने उन्हें सब तरह से परीक्षा करके देखा कि श्रीशुकदेव ने जो उपलब्धि की है वही परमार्थ सत्य है और उसके परे कुछ भी नहीं है। शुकदेव जी को आपने जब वैसा कहा तब शुकदेव जी का संशय भी चलागया। अतः हम देखते हैं कि अवतारी पुरुषों के भी गुरुकरण की आवश्यकता है। भगवान् श्रीरामचन्द्र, श्रीकृष्ण आदि के जीवन के इतिहास से हमें मालूम होता है कि उन सबों का गुरुकरण हुआ था। और यह भी हम जानते हैं कि विशेष २ शक्ति लाभ करने के लिये श्रीकृष्णादि अवतारी पुरुषों को साधन करना पड़ा। परन्तु उनके साधक जीवन का धारावाहिक इतिहास नहीं रक्खा गया। भगवान् बुद्ध और श्री चैतन्य केसाधक जीवन का इतिहास है तोर ही परन्तु वे भी पूर्ण रीति से हमें नहीं मिलते। भगवान् बुद्ध के जीवन इतिहास में हम देखते हैं कि वे भाँति २ की कठोर तपस्या करके देह को सुखा कर कंकाल सार बनगये थे। उनकी स्मृति और धारण शक्ति लुप्त होने लगी उसी वक्त उनको दैववाणी हुई जिसका आशय यह है कि शरीर को बहुत कष्ट देना या बहुत भोग में रहन से समाधि-लब्ध आत्म ज्ञान नहीं मिलता। मध्यपन्था से चलकर ध्यान योग में सिद्ध होते हुए साधक पूर्ण निर्विकल्प

समाधि को प्राप्त कर अमृत स्वरूप बन सकते हैं। यह देववाणी सुन कर उन्होंने भोजन करना आरम्भ किया और सुजाता नाम्नी वैश्य कन्याने आकर उनको खीर खिलाई। उसके पश्चात् उनके शरीर और अंग में बलाधान हुआ तब उन्होंने यह प्रतिज्ञा की-

इदासने सुष्यतु मे शरीरम्।
त्वगस्थिमांसं विलयंच यान्तु॥
अप्राप्यबोधिं बहुकल्प दुर्लभाम्।
नैवासनात् कायमतश्च लिप्यते॥

अपूर्ण

भजन

१

सुने न देखे भगत भिखारी।
तिनके दाम कामको लोभ न,
जिनके कुंजविहारी॥ १॥
सुक नारद अरु सिव सनकादिक,
ये अनुरागी भारी।
तिनको मत भागवत न समुझै,
सबकी बुधि पचि हारी॥ २॥
रसना इन्द्री दोऊ बैरिन,
जिनकी अनी अन्यारी।
करि आहार बिहार परस्पर,
बैर करत बिभचारी॥ ३॥
बिषइनिकी परतीति न हरिसों,
प्रीत रीति बाजारी।
व्यास आस-सागरमें बूड़ै,
आई भगति बिसारी॥ ४॥

२

हरि बिनु को अपनो संसार।
माया मोह बंध्यो जग बूड़त, काल नदीकी धार॥१॥
जैसे संघट होत नावमें, रहत न पैले पार।
सुत संपति दारा सों ऐसे, बिछुरत लगै न बार॥२॥
जैसे सपने रंक पाय निधि जाने कछू न सार।
ऐसे छिनभंगुर देहीके, गरबहि करत गंवार॥ ३॥
जैसे अंधरे टेकत डोलन गनत न खाइ पनार।
ऐसे व्यास बहुत उपदेसे, सुनि-सुनि गये न पार॥४॥

३

परम धन राधे नाम अधार।
जाहि स्याम मुरलीमें टेरत, सुमिरत बारंबार॥१॥
जंत्र मंत्र औ बेद तंत्रमें, सबै तारको तार।
श्रीसुक प्रगट कियो नहिं यातें, जानि सारको सार॥
कोटिन रूप धरे नंद-नंदन, तऊ न पायो पार।
व्यासदास अब प्रगट बखानत, डारि भारमें भार॥३॥

४

मदन गुपाल, सरन तेरी आयो।
चरन कमल की सरन दीजिये,
चेरी करि राखौ घर जायो॥ १॥
धनि-धनि मात पिता सुत बंधू,
धनि जननी जिन गोद खिलायो।
धनि-धनि चरन चलत तीरथकों,
धनि गुरुजन हरिनाम सुनायो॥ २॥
जे नर बिमुख भये गोबिंदसों,
जनम अनेक महा दुख पायो।
श्री भटकं प्रभु दियो अभय पद,
जम डरप्यो जब दास कहायो॥ ३॥